नवयुग आया

जीवन को सभी तरह से उच्च बनाने वाली भाव-पूर्ण कहानियाँ

लेखक—
श्री भगवतीप्रसाद वाजपेयी

प्रकाशक—
कालिज बुक स्टोर्स

❋ भूमिका ❋

आज की सभ्यता के सारे प्रयोग और प्रयत्न केवल इसलिये हैं कि मनुष्य के जीवन का मार्ग सरल, व्यापक और स्वच्छ बने। और शिक्षा क्षेत्र का पूर्ण विकास इस बात पर निर्भर करता है कि प्रत्येक विद्यार्थी विद्यालय में बीतने वाली घड़ियों को अपने भाग्य-निर्माण का युग समझे। मैंने इन कहानियों में इसी भावना, विचार और उद्बोधन की शक्ति देने की चेष्टा की है।

किशोरावस्था को मैं जीवन निर्माण का उत्पत्ति काल मानता हूं। इसी लघु वय में हमारी नयी पौध चेतना की लहरों में डोल-डोल कर यह अनुभव करने का अवसर पाती है कि हम इस युग, सभ्यता, विश्व और देश की एक शक्ति हैं। यहां वह दूध से धुली-सी पावन अवस्था होती है, जब उसके दायित्व की चेतना बराबर उसमें यह प्रश्न करती रहती है कि—

१. बोलो—तुम्हें क्या बनना है ?

२. बतलाओ—तुम्हें क्या चाहिये ?

और तभी उसे शिक्षा के उस आकर्षण और साहित्य की उस शक्ति की आवश्यकता होती है, जो उसकी महत्वाकांक्षाओं को समझे और उसका जीवन-पथ प्रशस्त बनाये।

इन कहानियों की रचना में, मैंने अपनी नयी पौध के इसी मानसिक विकास का ध्यान रक्खा है। मानव-जीवन कैसे सुखी, सन्तुष्ट और उच्च बने, आज के जीवन संघर्ष और सभ्यता की इस भाग दौड़ में हमारी गणना किस प्रकार उचित रूप में की जाय, इसकी छान-बीन में कहीं हम अपने को भूल न जायं, कहीं अपने को खो न दें, प्राण रूप में यही चेतना इन कहानियों की पृष्ठ-भूमि है। और दृढ़ विश्वास के साथ मैं यह कहने को

❀ विषय-सूची ❀

ंख्या	कहानियाँ		पृष्ठ संख्या
१	प्रलोभन	...	१—९
२	माता-पिता	...	१०—३०
३	बहन	...	३१—४५
४	निदिया लागी	...	४६—५९
५	मिठाई वाला	...	६०—६८
६	निरीक्षण	...	६९—८५
७	महापुरुष	...	८६—९८

प्रलोभन

वह कभी बेकार नहीं बैठता था। उसकी दूकान सबेरे सा
से खुल जाती और रात में भी, नौ बजे तक, खुली रहती
ान ही पर बैठा हुआ वह घर की सारी व्यवस्था भी क
ा था। उसके परिवार में वृद्धा पत्नी के अतिरिक्त एक छोट
की ही थी, उसकी नातिन। और बस, इन्हीं तीन प्राणिर
उसका एक छोटा-सा संसार था।

यों तो वह लोहे की अनेक चीजें बनाया करता था पर चाक
र सरौते बनाने में वह विशेष कुशल था। इस कारण दूर
तक उसका यश फैला हुआ था। यहाँ तक कि लोहे की को
चीज़ बनाने से वह कभी इनकार न करता। रहता यद्यपि
गाँव में था; तथापि शहर के लोग भी कभी-कभी कोई-न-को
ज़ बनवाने के लिये उसके यहाँ आ ही जाते थे।

उसकी अवस्था अब पैंसठ वर्ष के ऊपर हो गई थी। उस
ीर की त्वचा भी कहीं-कहीं इतनी ढीली होगई थी कि बा
ते-करते जब वह उत्तेजना में आ जाता, तो यकायक झटक
ाकर (उसकी लटकती हुई त्वचा) भी तदनुरूप हिल उठ
। उसकी नासिका कुछ अधिक फैलकर चौड़ी हो गई थ
सकी आँखों की ज्योति भी कुछ मन्द पड़ गई थी। इसलि
5 पुराने ढंग का चश्मा उसकी आँखों पर सदा चढ़ा रह
, जिसके लैन्स मोटे और कमानियाँ पीतल की थीं। कमा

(२)

सरदी के दिन थे और उस दिन कुछ बदली भी थी। सवेरे ती बजने का समय रहा होगा। पुनियाँ उसके पास आ पहुँची। सके सिर के बाल बिखरे हुए थे। नाक में सोने की एक छोटी थुनी भी वह पहने हुए थी। अपनी चंचल प्रकृति के अनुसार मीन पर पैर पटकती हुई, वह अपने नाना के पास आकर ोली—"नाना, ओ नाना !" गंगू ने सिर ऊपर उठाये बिना ही छा—"क्या है ?" पुनियाँ बोली—"बड़ी अम्मा कहती है, ाज तो बाजरे के पुवे बनाने का दिन है, और घर में तेल ोड़ा-सा ही है।"

यह पुनियाँ गंगू की नातिन है। जब यह माँ के उदर में थी, भी इसका पिता रेल से कटकर मर गया था। फिर जब यह ैदा हुई, तब तीन वर्ष के बाद इसकी माँ भी प्लेग मे चल सी। तब इसका पालन-पोषण इसकी नानी ने किया। इस कार प्रारम्भ से ही, यह अपनी नानी को 'बड़ी अम्मा' कहती आ रही है।

गंगू उस समय एक अस्तुरा बना रहा था। उसे तुरन्त बनवाने के लिए एक नाई भी उसके पास बैठा हुआ था। अस्तुरा करीब-करीब बन चुका था। केवल उस पर शान रखने भर की देर थी।

गंगू चाहता, तो पैसे उस नाई से दिलवा सकता था। पर उसके ग्राहक का काम अभी पूरा नहीं हुआ था और उसका

पुनियाँ लौट गयी और नानी के पास जाकर बोली—
...ते नहीं हैं अभी। नाना ने कहा है, ज़रा देर में मिलेंगे।"
" वह तो मैं पहले से ही जानती थी " कहती हुई बुढ़िय...
...बड़ाने लगी।

" जब-जब मैं अपनी ओर से कोई चीज़ खाने या बना...
...बात सोचती हूँ, तब-तब मुझे इसी तरह का जवाब मिलत...
आज यह कोई नयी बात थोड़े ही है।......अच्छी बा...
तू भी बैठी रहना पुनियाँ। आज कुछ भी खाना बनाने क...
...रत नहीं है। इस तरह दो-चार बार मैं जी भर कर झगड़...
...लेना चाहती हूँ। फिर देखती हूँ, कैसे इनकी यह आदत...
...छूटती है।"

" लेकिन बड़ी अम्मा " पुनियाँ बोली—" तुम तो भूख...
जाओगी, पर मैं ?—मुझ से तो भूखी रहा नहीं जायगा...
...चना-चबेना भी आज नहीं है। मैं जाती हूँ रोटी बनाने...
...शाम को बनाऊँगी।"

"हाँ, क्यों नहीं ! क्यों नहीं !" कहती सिर हिला-हिलाक...
...फटकारती हुई बुढ़िया बोली—"तू भी राँड़ उन्हीं के म...
करेगी !......अच्छा, देखती हूँ, तू कैसे रोटी बनाती है...
...दम—उसी दम मैं तुझे झाड़ू मार कर निकाल बा...
...दूँगी। शैतान की नानी, तू मेरा कहा नहीं मानेगी।.. क्यों...
..., जैसे तेरी माँ मर गयी, वैसे ही अगर तू भी आँखें मी...
...ी, तो मुझे चैन तो मिलती। हरामखोर !—हरामखोर...

तरह उस पर उठाकर पूछने लगी—"बोल, जल्दी बोल—तू उनकी राह पर चलेगी, या मेरी ?" पुनियाँ अपनी नानी के स्वभाव से परिचित न हो, यह बात नहीं। वह ऐसी निरी छोकरी नहीं, जो इन बातों को समझती न हो। वह दस-ग्यारह बरस की हो गयी है। पड़ोसिनें, जिन्हें वह मामी कहती है, उससे कहा करती हैं कि उसका बाप रेल में नौकर था। कहने को वह खलासी था, पर उसकी तनखाह ग्यारह रुपये थी। और अनाज रुपये का चौबीस सेर मिलता था। धोखे से वह रेल में कट गया था। इसके लिए उसकी माँ को पाँच सौ रुपये भी परवरिश के लिए मिले थे। तिस पर यह बुढ़िया—नानी उसकी—उसे हरामखोर कहती है। वह इतनी नादान नहीं, जो इन बातों को समझती न हो। उसके माता-पिता बने होते, तो वह क्यों इतनी दुःखी होती। क्यों नानी उसका ऐसा तिरस्कार करती! अब तक तो उसकी सगाई भी हो गयी होती।

और पुनियाँ मन-ही-मन सोचने लगी—और कोई बात होती, तो उसे बुरा न लगता, पर नानी ने यहाँ तक कह डाला कि मैं तुझे झाड़ू मार कर निकाल बाहर करूँगी।

उसकी आँखें आँसुओं से तर हो रही थीं। पर हरामखोर की मौसी होने का क्या मतलब होता है, यह सोचकर उसके मन में आया कि नानी सचमुच सठिया गयी है; तब दुःखावेग के क्षण हँसी की एक झलक उसके मुख पर ऐसी कौंध गयी—जैसे बादलों के भयानक गर्जन-तर्जन के साथ आकाश में बिजली की बंकिम रेखा।

बुढ़िया धूप में जाकर बैठ रही। उसने निश्चय कर लि
वह आज न तो खुद खाना बनायेगी, न पुनियाँ को
ाने देगी। देखूँगी, आज बुढ़ऊ क्या खाये लेते हैं! भू
केली उसी को तो सताती नहीं है, उनको भी तो कभी-न-क
र की भूख लगती है। फसल की नयी चीजें अकेली उसी
स्वादिष्ट लगती नहीं—उनकी तबियत भी तो चला करती
पर! उन्हें भी तो वे अच्छी लगती हैं। अच्छी नहीं लगत
फिर माँग-माँग कर क्यों खाते हैं। और खाते खाते अं
ो से सवाया ड्योढ़ा कैसे धमक जाते हैं। बात बस इत
है कि जब मैं कभी कुछ निश्चय कर डालती हूँ, तभी वह पू
। किया जाता। आज उनकी भी तबियत दुरुस्त हो जायग
। से जब उनकी आँतें कुलबुलाने लगेंगी, तब अपने आ
: आयेंगे। सोचेंगे—रोटी तैयार मिलेगी। पर जब यहाँ रो
कहीं कुछ रंग-ढंग ही न पायेंगे, तब अपने आप होश ठिका
जायँगे। अगर मुझसे कुछ पूछेंगे, तो पहले तो मैं अनसुन
आऊँगी। पर, फिर जब मेरी जबान खुलेगी, तब उन
ट दाल का भाव मालूम हो जायगा।

उधर गंगू सोच रहा था—माना कि अब उसका चलाचल
समय आ गया है, पर इससे क्या हुआ। अपने काम
किसी तरह कोर-कसर क्यों रक्खे! मर जाने पर यही स
रह ही जाता है! अधिक नहीं तो इतना तो लोग या
करेंगे ही कि कोई गंगू लुहार था। वह जो काम हाथ में लेत
उसे मेहनत और ईमानदारी से पूरा भी करता था। पचास

अस्तुरा बिल्कुल ठीक बन गया है; फिर भी उसे रेते
ते हैं—रेते ही डालते हैं।

गंगू अस्तुरे पर शान रखता जाता है।

नाई शान के पत्थर का चक्का घुमाये जा रहा है।

पत्थर से कभी सर्र-सर्र और कभी घर्र-घर्र का स्वर निकल
और कभी उससे चिनगारियाँ भी फूट निकलती हैं। चम
बढ़ी के साथ-साथ कभी नाई का दायाँ हाथ शान के पत्थ
नीचे, उसकी बगल तक, जा पहुँचता है; कभी बायाँ।

गंगू सोचता जाता है—अभी थोड़ी कसर है। ज़रा-स
र ठीक कर दूँ, तो एक दम से लक्क-दक्क हो जायगा। ज
लेता हूँ, तो काम भी ऐसा करके देना चाहिये कि उसक
निशानी रह जाय। वैसे मैं चाहता, तो अबसे कहीं पहले
कता था। पैसे भी मिल जाते और वक्त पर काम आते। ब
ा यह काहे को सोचेगी कि अब मैं इतनी मेहनत कर र
तभी इसकी कुछ कीमत भी है। '' मैं पागल तो हो नहीं गय
बस जरा भी कसर और है।''

इसी समय नाई ने टोक दिया "दादा, मैं तो समझता
अस्तुरा बन गया है।"

गंगू बोल उठा—"अभी बन गया! बन क्या ऐसे ही जा
बनाने में मेहनत पड़ती है। अभी तो नही बन गया; पर—
—अब...बस...बना ही जाता है। जरा हाथ बढ़ाकर चक्क
ाओ। हाँ, बस ठीक है। हालाँकि जान पड़ता है, हा

भी मैं जितना काम करता हूँ, दूसरा कोई—मेरी उमर क
के दिखादे तो जानूं ! बस, ठहरो। अरे, यह नोक रह
! लाओ, इसको भी ठीक कर दूँ। हाँ, दो हाथ और
ाओ। कोई जानकार देखेगा, तो कह देगा—गंगू कारीगर
र था। लेकिन......। और इसी लेकिन से मुझे चिढ़ है
ी भी काम में जहाँ यह लेकिन घुसा कि सब मटियामे
ा!... हाँ तो लो। अब यह बन गया। लाओ निकाल
। धूप सिर पर चढ़ आयी। अरे यह तो दोपहर लौटने क
! बड़ी देर हो गयी। खैर, कोइ बात नहीं तुम्हारा काम
गया। असल चीज़ काम है।

गंगू पैसे लेकर घर चला आया।

(४)

जब गंगू घर के अन्दर पहुंचा, तो क्या देखता है—बुढ़िय
री ओर मुँह लटकाये बैठी है। रोटी तैयार होने के को
ह नहीं देख पड़ते।

आँगन से ही उसने पुकारा—"पुनियाँ! ए पुनियाँ!!" सु
पुनियाँ ने जाना कि नाना उसे पुकार रहे हैं।

गंगू और भीतर की ओर जो बढ़ा, तो क्या देखता है-
नियाँ बैठी सिसक रही है। गंगू तब उसके निकट चला गया
ला—" अरे ! तू तो रो रही है!"

तब वह उसी चारपायी पर बैठ गया और पुनियाँ को अप

सिसकियाँ भरती हुई वह आगे और कुछ न कह सकी।

"अच्छा तो यह बात है!" पुनियाँ के सिर को अपनी गो
भर कर, उसपर धीमे-धीमे हाथ फेरता हुआ गंगू कह
ा—"चाण्डालिन ने—जान पड़ता है—तूझे खूब बु
ा कहा है। तू अभी उसे जानती नहीं। उसका स्वभाव
ा चिड़चिड़ा है। वह बड़ी दुष्ट है। यह...ले, ये पैसे ले
लिन के यहाँ से तेल झट से ले तो आ। मैं तब तक नह
ऊँ! रो मत। रोने की क्या जरूरत है! तू अब ऐसी नि
ी नहीं है। मैं जानता हूँ, तू काफ़ी समझदार है। तेरा को
र नहीं है। कड़ी बात तुझे कुछ ज्यादा लग जाती है। ब
नी ही बात है।"

(५)

पुनियाँ ने आँसू पोंछ डाले और झट से एक छोटा बर्त
कर वह तेल लेने चली गयी।

थोड़ी देर में जब गंगू नहा कर लौटा, तब पुनियाँ पुवे ब
ी थी। रसोई से ही उसने कह दिया—आओ नन्ना। पु
ार हैं। बड़ी अम्मा को भी बुला लो।"

बुढ़िया मन ही मन कह रही थी—जब कोई मुझसे खाने
ागा, तब उसे बताऊँगी। ऐसी-ऐसी सुनाऊँगी, जो धोये
ेंगी।

गंगू के मन में आया कि वह बुढ़िया के पास जाय, परन
जा न सका। क्षण भर स्थिर रह कर कुछ सोचता औ

मेरे बनाये हुए सगीत पर बीस रुपये इनाम मे मिले हैं। ये देख,
न-पाँच रुपये वाले चार नोट अभी चिट्ठी-रसां दे गया है।"

बुढ़िया ने जो कुछ तै कर रक्खा था, वह सब का सब उसे
र गया। वह तुरन्त उठ कर झटपट आँगन में आ पहुँची
र उमंग मे मतवाली सी हो कर बोली—"लाओ-लाओ। मुझे
—मै अब हँसुली बनवा लूँ!" और उसका पोपला मुख
सन्नता से इतना फैल गया कि होंठ ही नहीं, उसकी आँखें तक
सने लगीं।

और गंभू ठट्ठा मार कर हँस पड़ा!

माता-पिता

(१)

एक साधारण-सा गाँव है और बाजार लगी हुई है। इध
र अनाज, कपड़े, मिठाई, पसरट्ट तथा शाक-भाजी आ
दूकानें लगी हुई हैं। पृथ्वी की सतह से कुछ ऊँचे चबूतरे
हैं। दूकानदार लोग उन्हीं पर अपनी दूकान लगाये बैठे हुए है
ाँ चबूतरे नहीं हैं, वहाँ लोग जमीन पर ही कपड़ा, बोरा र
बिछाकर—नहीं तो ईंट ही रखकर—बैठ गये हैं। य
नीम तथा जामुन के दो-चार पेड़ भी हैं। कुछ दूकानद
ीं पेड़ों की जड़ों के सहारे बैठकर दूकान सजाये हुए हैं। क्र
क्रय के कथोपकथन से जो एक गम्भीर नाद उठता है, व
ाता की सृष्टि की भाँति व्यापक और सर्वथा विलक्ष
ेत होता है। इस छोर से उस छोर तक जैसे बहुत कुछ
सिलसिला उसका टूटा हुआ है। लोग चीज खरीदते हैं, प
न्न होकर नहीं, मजबूर होकर। वस्तुओं की नवीनता जितन
को प्रभावित करती है, पैसे का अभाव उससे अधिक उन
य को काटता और जलाता है।

जामुन के एक वृक्ष की जड़ पर बैठी हुई गिलहरी अप
ले पञ्जों से जामुन पकड़े हुए उसे कुतर-कुतर कर खा रही है
बार जरा-सा गूदा अपनी चटोरी जीभ से लगाकर इध
र देखती रहती है, कभी फुदक कर ऊपर चढ़ जाती है, क

जामुन के इसी पेड़ के निकट शाक-भाजीवाले ताजी हरी हर्र
{कारियाँ लिये हुए उत्साह-पुलकित मुद्रा से प्रत्येक व्यक्ति कं
ोर उत्सुकता-भरी आँखें बिछा रहे हैं। इन्हीं लोगों में सात
ाठ वर्ष की एक बालिका भी है। कीचड़ के रङ्ग की-सी मैर्ल
ाली पाड़ की एक धोती-भर उसके बदन पर है। रंग खू
ला गेहुँआँ, आँखें बड़ी-बड़ी सीपी-सी, चंचल और चट
पना परिचय अपने-आप दे देने वाली। शरीर इकहरा, मुँ
छ लम्बा और नाक नुकीली। एक मैली-तेलही चद्दर में ढेर-का
(बथुआ लिये हुए बैठी है। कोई उसकी ओर देखे या न देखे
ोई उसके बथुए की ओर आवे, न आवे, पर वह सामं
र उधर जिसे देखती, उसी से कह बैठती—"बाबूजी, बथुअ
लो, बथुआ।"

पवन के झोंकों से जैसे कोई छैली हुई चमेली की शाख
पुष्प लहरा उठे, वैसे ही उस बालिका का कथन निकट ही खड़े
ए एक युवक के मानस में एक छोर से दूसरे छोर तक लहर
ठा। उसी क्षण उसने अपनी शाक-भाजी से भरी हुई झोल
खाकर कहा—"पर मैं तो दूसरी जगह से साग ले चुका हूँ
ह देख!"

बालिका एक क्षण कुछ अप्रतिभ-सी हो गयी, पर दूसरे हं
ण वह—"तो थोड़ा-सा मुझ से भी ले लो। बड़ा बढ़िया बथुअ
। अभी अभी ताजा तोड़कर लायी हूँ।"—कहती हुई बथुए कं
ली और हरी गुच्छियाँ उस ढेर में से कुरेदने लगी।

तेरे साथ और कौन है ?" यद्यपि वह अपने प्रश्न से ही पूछ लेन चाहता है कि तेरा साथ कौन देता है ? आज का समाज क्य साथ देने की भावना अपने में रखकर चल रहा है ? एक से दो दो से चार, फिर दर्जनों वर्ग और समूह बन गये हैं और परस्पर नोच-खसोट में लगे हैं। संघर्ष ने निर्माण को दबोच रखा है।

बालिका बोली—"लछमन के पुरवा में रहती हूँ, बाबू जी ! बप्पा बीमार है। इसी मारे मैं आई हूँ; नहीं तो वही आते हैं।"

युवक—"और तेरी माँ ?—वह नहीं आती ?"

बालिका—"अम्मा ?—वे तो अन्धी हैं ?"

हाय रे संसार !—युवक का हृदय एक दम से अस्थिर हो उठा। उसके जेब में रुपयों के साथ पैसे केवल दो ही बचे थे। सो उन्हीं पैसों को उसने चट से निकाला, उसी बथुए की झोली में फेंककर वह रूमाल आँखों से लगाकर वहाँ से चल दिया।

बालिका कहती रही—"अरे बाबू, बथुआ भी तो लिये जाओ।"

पर युवक थोड़ी देर भी वहाँ ठहर न सका।

(२)

अम्मा ने पूछा—"आज इस समय तू उदास-सा क्यों देख पड़ता है, भैया ?"

रजन आगे के दोनों बड़े बड़े दाँत दिखाते हुए हँसने का-सा मुह बनाकर बोला—"नहीं तो !"

अम्मा बोली—"अब चाहे हँस ही दे; पर तेरा मुँह अभी

[१३]

शाक-भाजी से भरे हुए उस बँधे अँगोछे की गाँठ खोलते हुए रञ्जन बोला—"बड़ी शक्की स्वभाव की हो गयी हो, अम्मा! भला मैं उदास क्यों होने लगा!"

"आलू, बैंगन, गोभी का फूल और बथुआ—सभी चीजें अच्छी हैं! जान पड़ता है, काशी में पढ़ लिखकर तू अब इस लायक हो गया है कि घर-गिरस्ती की चीजें खरीद सकेगा।"—कहती हुई रञ्जन की माँ मुस्करा उठीं। दुर्बलता के कारण आँखें गड्ढों में धँसी हुई हैं। चेहरे पर झुर्रियाँ और सिकुड़न भी है। आगे के दो दाँत भी नहीं हैं। सो, सच पूछो तो उस समय रञ्जन की माँ के हास-मुखरित मुख की शोभा ऐसी विचित्र हो गयी कि रञ्जन एकाएक उनकी ओर देखता रह गया।

बाहरी चौक में आकर रञ्जन अपने बैठक में पहुँच गया। एक बार शाल उतार कर खूँटी पर रखने लगा, पर कुछ सोच-कर फिर उसे ओढ़ लिया। अलमारी खोल कर कई पुस्तकें एक-एक करके उठाने, देखने और फिर उन्हें यथास्थान रखने लगा। क्या पढ़े, क्या करे, कुछ निश्चित नहीं कर सका। ... पेन्सिल का क्लिप कभी होठों से आ मिलता है, कभी मस्तक पर जा पहुँचता है। पन्द्रह मिनट हो गये हैं, कमरे से बाहर निकला और फिर भीतर आ पहुँचा है। बैठने को हुआ, पर बैठा नहीं। तब कमरे में इधर-से-उधर चक्कर लगाना शुरू किया। जेब से कुछ कागज निकाले। कुछ देखे भी, फिर रख दिये। अब एक डायरी निकली और पेंसिल से कुछ नोट किया। पहले थोड़ा सा

चट गया, पेन्सिल रुक गयी, डायरी लिखना बन्द कर दिया
छा—"दादा, लछमन का पुरवा यहाँ से कितनी दूर होगा ?"

दादा—"यहाँ से सवा-डेढ़ कोस होगा। क्यों ? क्या वहं
छ काम है ?"

"नहीं तो, यों ही पूछा।"

"काम हो तो बतलाना। अपना नौकर गोकुल वहीं
हता है।"

"हूँ, कोई काम नहीं। होगा, तो बतलाऊँगा। पर वहाँ
ाम ही क्या होगा ! हाँ, कभी-कभी जी चाहता है कि अपने
ाँवों मे घूम आया करूँ।"

"अच्छा तो है। बड़ा अच्छा विचार है यह तुम्हारा। न
ो, आज ही घोड़ी कसवा लो। जिधर चाहो, निकल जाओ।
ाजकल सरसों, अलसी तथा सेहुआँ खूब फूला हुआ है। जी
ी बहल जायगा। न हो, साथ मे किसी को लिये जाना।"

"मैं जाऊँगा तो अकेला ही। सो भी किसी सवारी पर
हीं, पैदल।"

"जैसी तुम्हारी इच्छा। पर कोई देखेगा तो क्या कहेगा !
तिष्ठा बनाने से बनती है, खोने मे खो जाती है। लेकिन अगर
म पैदल ही जाना चाहते हो, तो वह भी अच्छा है।
हलते-टहलते चले जाना। पर साथ में गोकुल को भी ले लेना
च्छा है।"

पूज्यचरण दादा जी,

अब से पचास रुपये के बदले साठ रुपये भेजिये। पचास रुपये में काम नहीं चलता है। शाम को एक प्रोफेसर साहब के घर पर पढ़ने जाना होता है। साइकिल के बिना जाने-आने में बड़ी दिक्कत होती है। सो साइकिल लेनी ही पड़ेगी। साठ में काम लायक अच्छी मिल जायगी। इकट्ठे इस समय भेजने मे शायद तुमको दिक्कत हो। इसलिये इंस्टालमेंट पर (थोड़ा-थोड़ा देकर) ले लूँगा। लेकिन ब्याज लगेगा. और अब अस्सी रुपये के बजाय सौ रुपये देने पड़ेंगे। जैसा ठीक समझिये। या तो एक सौ तीस रुपये एक साथ भेज दीजिये, या साठ रुपये बराबर भेजते रहिये। क्या बताऊँ खर्चे में किफायत करने की भरपूर चेष्टा करता हूँ; पर जो खर्चे बँध गये हैं, उन्हें तोड़ने मे कष्ट होता है।

आशा है, आप स्वस्थ और सानन्द होंगे। अम्मा के सिर में पीड़ा हुआ करती थी। अब क्या हाल है? जी चाहता है, कुछ दिनों के लिये उन्हें यहीं ले आऊँ। यहाँ (काशी में) रोज गङ्गास्नान करेंगी, तो तबीयत ठीक हो जायगी। मकान किराये पर ले लूँगा। होस्टल मे जो खर्च अधिक होता है, उसी में किराया हो जाया करेगा। पूछकर लिखिये।

बिनू (बिनोद) तो अब हँसने लगा होगा। उसे खिलाने को जी कभी-कभी छटपटा उठता है।

चरण सेवक—

ह किसी से पूँछ बैठेंगे ! हँ-हँ झूठ बोलना बुरा है। तो क्य
ह निरा बुरा ही है ? क्या बुरा भला नहीं होता ? पुत्र-जन्म
कितना शुभ होता है ? पर क्या वह बुरा जरा भी नहीं है—
किसी को भी नहीं है ? क्या उस नारी के लिये भी वह भल
ो है, जो पुरुष की प्राण है और जो इसी उपलक्ष्य में असह
ीड़ा से अन्तर्हित हो जाती है ! मन का भ्रम ही तो है यह सब
ह कलम है; क्यों है भला यह कलम ? यह कपड़ा क्यों नहीं
? यह कम्बल है। अच्छा तो इसका नाम हल क्यों नहीं है
ह बिस्कुट है ? अच्छा तो उसका नाम दमयन्ती क्यों नहीं
खा गया ? सब अन्त में मान ही तो लिया गया है न
फिर क्या यह जरूरी है कि मिथ्या को हम घृणित ही समझ
रें ? जब यह समझना मेरे ही ऊपर निर्भर है, तो हमें अधि
ार है कि हम चाहें तो मिथ्या को भी प्यार करें। प्यार करन
ी मिथ्या नहीं है। जो प्यार है, वही सत्य है। क्योंकि वह
िथ्या को भी सत्य बना डालता है।"

और उसी क्षण रञ्जन सोचने लगा—जैसे संसार में मनुष्य
ीवन का अस्तित्व सत्य है और फिर क्षण-भर के घटनाक्रम
ा ही असत्य ; अर्थात् जो उसे सत्य कहो, तो वह मिथ्या है
ौर जो असत्य कहो तो अमिथ्या। वैसे ही यह मेरा कथन
िथ्या है, तो भी वह सत्य के समान सुखकर है। और जो
नोहर, सुखकर और शांतिकर है, वह यदि ऊपर से मिथ्यावत
लकता है, तो भी क्या मूल में वह कहीं सत्यवत् नहीं है ?"

ो एक आँधी मे ही उसने अपने आपको उलझा रक्खा है। अनेक बार वह अपने आप पर झुँझलाया; पर अन्त में एक-एक विचार उसके सिर पर सवार होकर नाचता ही रहा है। आज जान पड़ता है, रञ्जन उससे छुट्टी पा लेना चाहता है।

"आज जनवरी २७ वीं तारीख है। सब खर्चे निपटा कर उसने बीस रुपये बचाकर रख छोड़े थे। पर आज उनसें केवल दो रुपये शेष हैं। मनीआर्डर हमेशा पाँच तारीख के लगभग आता है। वह चाहे तो तार देकर रुपया मँगा सकता है; पर पीछे कैफियत कौन देगा कि अचानक ऐसी क्या आवश्यकता आ पड़ी? और उस गाँव में तार भी तो दूसरे दिन से पहले नहीं पहुँच सकता। आने में भी दो दिन लगेंगे। इस तरह चार दिन लगेंगे। .... अब रात हो गई; नौ बजने को है। कल रविवार है।......तो क्या दो रुपये में आठ दिन नहीं टाले जा सकते? लेकिन यह संकल्प कितना कष्टकर है? इधर किसी को देना नहीं है तो क्या हुआ? शायद कोई आवश्यक खर्च आ ही लगा, तो?"

होस्टल का नौकर चिट्ठी छोड़कर आ गया। रञ्जन ने पूछा—"चिट्ठी छोड़ आया?"

"हाँ हुजूर, छोड़ आया।"

"आज तो डाक निकल ही चुकी है। अब तो कल निकल सकेगी।"

"हाँ हुजूर, अब कल सबेरे निकलेगी।"

मिलेगी। फिर वह मनीआर्डर करेंगे। इस तरह पूरा सप्ताह समझो।... ..तारीख दो को बस अचानक वह विद्यार्थी आ गया। उसके पास ओढ़ने को कम्बल न था, न पहनने को कोई गरम कपड़ा। बेचारा रोज जाड़ा खा रहा था। अगर उसको पाँच रुपये न देता, तो कैसे उसका काम चलता! उस दिन मेस के नौकर मटरू की मां की अचानक मृत्यु हो गई। बेचारा घर जा रहा था। उसका हाथ खाली था। उसको छः रुपये उसके गिड़गिड़ाने पर दे ही देने पड़े। इसी तरह रुपया घट गया। आवश्यकता पर किसी से बिना किये काम कैसे चलेगा?—चलेगा इसी तरह चार छः दिन सारा खर्च बंद रखा जाय।

"यह दानशीलता अब कुछ संयत करनी होगी। खर्च बढ़ाना ठीक न होगा। लेकिन किया क्या जाय? संसार को देखकर आँखें नहीं फेरी जातीं। जो दीन हैं, दुखी हैं; उनकी सेवा सहायता मे यदि कष्ट होता है; तो क्या उसमे आनन्द नहीं मिलता! उपकार मान कर कौन उपकार करता है? जो सहायता पाता है; उसका यह अधिकार है कि वह सहायता पाये। जो सहायता करता है, उसके जीवन का यह नशा है—सुख है। अत: उसकी यह आवश्यकता है कि वह असहायों की सहायता करे, और जब तक उसमें शक्ति रहेगी, वह अपने जीवन के आनन्द के लिये वैसा करेगा ही। और वह, जो सब कुछ हमसे करवाता है, जो यह सब देख-देख कर मुसकराया करता है, वह अन्तर्यामी ही जब सहायक के मन की प्रेरणा का सूत्रधार

(४)

मुलुआ जाति का अहीर है। मंगलपुर (कानपुर) के निकट लछमनपुरवा में रहता है। उसकी पत्नी है और एक कन्या। पत्नी की आँखें चेचक से जाती रही थीं। कन्या का ब्याह हो चुका था। निकट के गाँवों में समर्थ किसानों तथा जमीदारों के यहाँ मेहनत मजदूरी करके वह अपना पेट पालता आया है। इधर दो महिने से उसे गठियाबात ने धर लिया है।

उस दिन जब वह लड़की घर लौटकर आई; तो अपने बप्पा से बिहँसती हुई बोली—"बप्पा; आज मैं आठ पैसे ले आयी, ये आठ पैसे !"

"ये आठ पैसे" कहती हुई रधिया अपनी मुट्ठी खोलकर पैसे दिखाने लगी। उसके मैले धूलभरे बाल इधर-उधर लहराने लगे। धोती उसने कन्धे पर छोड़ ली। उसे पुलक-प्रसन्न देखकर मुलुआ के चेचक से भरे हुए गाल बढ़ी हुई दाढ़ी में से खिलकर फैल से गये। बोला—"तो क्या पैसे का तीन पाव ही लगाया था !"

"न-अ-बप्पा" कहती हुई पैसे-भरी बन्द मुट्ठी बजाती हुई रधिया बोली—"एक बाबू सामने आ गये। मैंने कहा बथुआ ले लो बाबू, बथुआ।"

उन्होने कहा—"मैं तो पहले दूसरे से ले चुका।"

है ?" मैंने कह दिया—"मैं अकेली आई हूँ। बप्पा बीमार है अम्मा अन्धी ?" सच जानो बप्पा वे सुनकर बड़े दुःखी हुए तुरन्त दो पैसे मेरी बथुआ की झोली में छोड़कर चल दिये। मैंने बहुतेरा कहा—"अपना बथुआ तो लिये जाओ ...।" पर वे लौटे नहीं ! रुमाल निकाल कर उन्होंने अपनी आँखों से लगा लिया। बड़े अच्छे थे वे बप्पा, बड़े सुघर, जैसे अपने घर के बड़े भारी रईस हों।"

मुलुआ ऊपर की ओर देख हाथ जोड़कर बोला—"ये पैसे हम लोगों की मदद के लिये भगवान ने भेजे हैं। मैं बूढ़ा हो गया इस दुनियाँ मुझे ऐसा दयावान आदमी अभी तक नहीं मिला।... सोचता था—अगर तेल न आया, तो मालिश कैसे करूँगा। सो जानो भगवान ने मेरे मन की जानकर उस बाबू को भेज दिया। राम करे उनकी हजार बरिस की उमिर हो। अरे हाँ, हम गरीबों के पास असीसा के सिवा और क्या है !...अच्छा, लो अब छः पैसे का तो बाजरा ले आ, एक पैसे का सरसों का तेल और एक पैसे का गुड़। बाजरे की ताजी रोटी में जरा गुड़ मिलाकर खूब मीस देना, मलीदा बन जायगा। फिर मजे से मुसुर-मुसुर उड़ाना। जरा-सा मुझे भी दे जाना।"

"आज मलीदा खाने को मिलेगा। रे, रे !" कहती हुई बारम्बार रधिया आँगन-भर में उछलने-कूदने लगी।

रधिया की माँ एक ओर बर्तन मल रही थी। बाप-बेटी की बात-चीत वह सुन न सकी थी। रधिया को खुश देखकर वह वहीं से पूछने लगी—"क्या है री !—क्या बात है ? अरी मुझे तो बता जा आगे।"

(५)

मुतुआ दरवाजे पर धूप में चारपाई डाले पिंडुलियों मे तेल
[मल] रहा था। अचानक "पाँच रुपये का मनीआर्डर है"—
[क]हता हुआ पोस्टमैन उसके पास आ पहुँचा। मनीआर्डर की
[ब]ात सुनकर आश्चर्य के कारण मुतुआ के मन की दशा उस
[र]ूप की सी हो गई जो स्वप्न में पर लगाकर आकाश मे उड़ने
[ल]गा हो। इच्छा हुई, पोस्टमैन से कह दे—"नहीं-दादा. मेरे
[कु]टुम्ब क्या, बाप-दादा के बंधु-बान्धवों मे भी कोई ऐसा नही,
[जो] मेरे पास मनीआर्डर भेजने लायक़ हो, किसी दूसरे का
[हो]गा।" पर फिर सोचा—"जब भगवान की दया मेरे ऊपर
[हु]ई है, किसी ने मेरे पास (भूल ही से सही) भेज ही दिये हैं।
[पाँ]च रुपये, तो ले लेने में क्या हर्ज है! न लेने से कहीं भगवान्
[बु]रा न मानें। अभी उसी दिन रधिया को किसी बाबू ने दो
[पै]से यों ही दे दिये थे। इसी तरह किसी ने ये रुपये भी भेज
[दि]ये होंगे।... ..हाँ, अच्छी याद आयी, उस दिन इधर ही से
[स]रकार के छोटे भाई भी तो निकले थे। साथ मे उनका नौकर
[भ]ी था। कैसे प्रेम से बातें करते थे। पूछने पर मैंने कहा–"गुजर!
[गु]जर भगवान् कराता है। घर में दाना हुआ, मजूरी कहीं लग
[ग]यी, चार पैसा पा गया, तो दो दिन खाने को हो जाता है।
[न]हीं हुआ, तो बिना खाये भी रह जाता हूँ। रधिया के लिये
[क]हीं से एक-दो रोटी माँग लाता हूँ। उसे बिना खिलाये तो यह
[पा]पी आत्मा मानती नहीं! हम दोनों तो भूखे रहने के अभ्यासी

की आँखों से टप टप आँसू गिरने लगे !...... कहीं उन्होंने
आर्डर न भेजा हो !"

एक क्षण में मुलुआ ये सब बातें सोच गया। फिर पूछे
ा—"कहाँ से आया है भैया ? किसने भेजा है ?"

पोस्टमैन ने जेब से—फटे कागजी केस में—पुराने ढंग का
चश्मा निकालकर आँखों पर चढ़ा लिया। दो मिनट मनी
र्डर फार्म को अच्छी तरह देखकर उसने उत्तर दिया—
नारस से आया है। भेजने वाला कोई अरुण है। जा
ता है, वह नगवा के कालेज में पढ़ता है।"

मुलुआ खुशी के मारे सदेह हँसते-हँसते बोला—"हाँ है
बाबू होंगे, वही। अच्छा भैया, लाओ। अंगूठा की निसान
ायी जायगी ! हाँ, यही तो। दो चार बार ऐसा मौका आ
ा है। ठाकुर साहब का मकान जब बनता था, तब हम बा
ड़ा बँटता था। तभी निसाना अँगूठा होती थी। और
चार-बार। अब और ज्यादा तुमको क्या बताऊँ ? .
वाही ? गवाही के लिए हिनुवाँ ग्वाला को बुला लो भैया
पास ही रहता है।.. अरे कहाँ गयी री रधिया रॉड़ ? जा
ता है, इस समय खेलने निकल गयी है.. भैया देखते तो हो
न महीने से भी ऊपर हुआ, चारपाई से लगा हूँ। दो दिन
सेहत है। उठा तक नहीं जाता था। अब खड़ा हो लेत
पर चला अब भी नहीं जाता भैया। दो पैसे तुम भी
ा। तुम्हीं उसको बुला भी लो।...अरे हाँ, हमारे भाग
को भी दो पैसे मिल जायँगे ?"

ानाथ ! तुम धन्य हो ! प्रभु, तुम घट-घटवासी हो ! क
भीतर की बात तुमसे छिपी है ? अरे, इतना तो कर देते f
' रधिया ...!" मुलुआ इस प्रकार प्रार्थना करते हु
नन्दाश्रु गिराने लगा।

पोस्टमैन दिनुवाँ को ले आया। मुलुआ का बायाँ हा
ड़कर उसके अंगूठे को काली स्याही के पैड में घिसने लगा
ोआर्डर-फार्म पर निशानी-अँगूठा तथा गवाही हो जाने
र मुलुआ को पोस्टमैन ने चार रुपए पन्द्रह आने दे दिये
ली और सफेद मिश्रित खिचड़ी मूछों तक हँसते हुए मुलुअ
ये-पैसे सँभाल कर बोला—"इनाम का एक आना तुम
ना ले लिया न ? चलो, एक आना ही सही।...जाते हो
च्छा भैया पाँव लागो !"

मुलुआ ने उन रुपयों-पैसों को मस्तक पर लगाया, पि
काश की ओर हाथ जोड़ कर आनन्दाश्रु गिराते हुए बोल
गवान् तुम्हारी लीला !"

(६)

दस वर्ष इसी तरह बीत गये।

रजन अब देरापुर (कानपुर) का तहसीलदार हो गया है
।रिवार वह वहीं रहता भी है। उसके ज्येष्ठ-भ्राता मक्ख
ल अपने गाँव पर ही रहते है। माँ का देहान्त हो चुका है
न वर्ष से लगान वसूल नहीं हो रहा। पर मालगुजारी

जाते हैं। बल्कि कभी-कभी तो अपनी जरूरत भर के लिए भी रुपया नहीं रह जाता. तुमको कहाँ से दूँ ?"

मक्खन से न रहा गया। वर्षों का भरा हुआ क्षोभ आज वे रञ्जन से प्रकट किये बिना न रह सके। बोले—"जानते हो, तुम्हारे पढ़ाने में कितना रुपया लगाये बैठा हूँ? पूरे दस हज़ार रुपये लुटा चुका हूँ! किस आशा पर? - यही सोचकर न, कि किसी दिन जब तुम पढ़-लिखकर किसी ऊँचे पद पर होगे तो एक साल में इतना रुपया फेंककर अलग कर दोगे। पर देखता हूँ, पद तुमको ऊँचा मिल भी गया, तो भी घर की ओर तुमने ध्यान नहीं दिया। तुम्हारी जगह पर कोई और होता, तो तीन वर्ष में न जाने क्या-से-क्या करके दिखा देता! इधर तुमसे सुन रहा हूँ कि अपना ही पूरा नहीं पड़ता। तुम मुझसे इतना झूठ बोलते हो! तुम्हें शर्म आनी चाहिये! अरे, क्या हज़ार रुपये महीने की भी तुम्हारी मासिक आय न होगी? क्यों मेरी आँखों में धूल झोंक रहे हो?"

रञ्जन माँ के साथ अकेला रहता है। विवाह अभी तक नहीं कर सका। जैसा विवाह वह करना चाहता है, वैसा जब तक न हो तब तक...। फिर माँ की रुचि का ध्यान। यों विवाह न भी करे तो क्या! शरीर का धर्म मन के अनुसार चलता है। उसको इतनी छुट्टी कहाँ कि इस विषय को अधिक महत्व दे। जिनके विवाह नहीं होते, क्या वे सदा और सभी तरह दुखी ही रहते हैं? इसके सिवा आदर्शों के पालन का सुख क्या कम बड़ी चीज़ है? उसके भीतर एक संकल्प उठता रहता है—"मैं आदर्शों पर मरना चाहता हूँ। —

रञ्जन आँखों से चिनगारियाँ उगलते हुए बोला—"ब
ा, अब आगे कुछ न कहना ! कोई किसी के लिए कुछ न
ता। आपने मेरे लिए जो कुछ किया, वह आपका कर्तव
। मैंने जो कुछ अपने पढ़ने में आप से खर्च कराया, उसव
पूरा अधिकार था, क्योंकि मै अपनी रियासत में आधे व
दार हूँ। आप बीस हज़ार सालाना मुनाफे की रियासत
'मी बने बैठे हैं।—सफेद और स्याह जो चाहते है, कर
क्या मै कभी हिसाब देखने बैठता हूँ ? आपको अप
मत, अपनी शान, अपना वैभव बढ़ाने का शौक है। मु
जो कुछ ईश्वर ने दिया है उस पर संतोष के साथ जीव
ा ने, भरसक ग़रीब, अनाथ और दीन-दुखियों की सेव
ायता करने और उनको मानवोचित, अधिकारो के प्र
गरूक बनाने का शौक है। कभी सोचा है कि मृत्यु भी जीव
तौलने के लिए एकाएक आ पहुँचती है ? आज हम अ
ामी का काम बिगाड़ें, अन्याय और अत्याचार से अप
गरम करें—अपनी रियासत बढ़ावें, तो कल जब मृत्यु
मना होगा, तब, उस वक्त, उसकी खातिर कैसे करेंगे ? कौ
धन मुझे उसके आगे खड़ा रखने मे बल देगा ? यह ठीक
ाटी, यह शान-शौकत, कितने दिन के लिए है ? ..फिर अ
ते हैं कि मेरे पास इतना पैसा ही नहीं बचता कि आप
र सकूँ ! पर आप यह क्यो नही देखते कि भगवान् की कृ
र ममता से, दीन-दुखियों की आशीष-वार्ताओ और मंग
मनाओं की प्रचुर सम्पत्ति तो मैं अपने कुटुम्बियों के लि
ाह किये दे रहा हूँ। देखना हूँ तीन वर्ष मे आलमाल्लाशी अ

क-साफ मतलब यह हुआ कि आप चाहते हैं—सदा हाथ ह
ता रहूँ, कभी दाँव खाली न जाय। आपकी इस इच्छा
तर क्या है, कभी सोचा है? यह हिंसा है—इसी को हिंस
ते हैं। शत-शत और सहस्र-सहस्र आदमियों के परिश्रम क
ाई—उनके पेट की रोटियाँ—काट-काट कर, उनकी अपन
र कुटुम्बियों की आकांक्षाओं को मिट्टी में मिला-मिला कर
लोग जायदाद, महल और मिलें खड़ी करते हैं, उनको
सी खूँखार हिंसक से कम नहीं समझता।...सो दादा, आ
ा दूर तक सोचें, तो आपको पता चलेगा कि जो कुछ
ा है, समय की गति-विधि जैसी देख पड़ रही है, उसमें यु
माँग का ही हाथ है। कोई उसकी दिशा को बदल नह
कता। जो कुछ और जैसा कुछ उसके सामने आवे, निबाह
ो। जो ईश्वर दिखलावे, देखते चलो, मैं तो...।"

इसी समय मक्खन ने बीच में बात काटते हुए कहा-
मसे मैं व्याख्यान सुनने नहीं आया। अगर मैं ऐसा जानत
इतना पढ़ लेने के बाद तुम मुझे उपदेश देने लगोगे, मे
द न करके मुझे जानवर समझोगे और इस तरह मेरी सा
शाओं पर पानी फेर दोगे, तो मैं ऐसी गलती न करता
से भूल हुई। अब मैं जाता हूँ। जो तुम्हारे मन में आ
करो। मुझसे तुमसे कोई मतलब नहीं।"

और वास्तव में वे लौट गये।

। खेती बड़े मजे से कर लेता था। उसके दो छोटे-छोटे बच्चे । थे। रधिया उन फूलों-से बच्चों के साथ हँसती-खेलती हुई पनी गृहस्थी मजे से चला रही थी।

समय ने करवट ली।

इधर दो वर्षों से खेती मे कुछ भी पैदावार नहीं हो रही ी। जो कुछ होती थी, वह खलिहान से उठते ही सीधे बीज ी अदायगी में चली जाती थी। जानकी ने पिछले दो वर्षों ं रधिया के गहने बेचकर किसी तरह थोड़ा लगान अदा केया और अपने खाने-कपड़े का खर्चा चलाया पर इस वर्ष सका निर्वाह होना कठिन हो गया। जो लगान बकाया रह या था, वह भी वह न दे सका। फल यह हुआ कि जमींदार े उस पर बेदखली का दावा दायर कर दिया।

मामला तहसीलदार साहब की अदालत में पेश था। जानकी कह रहा था—"सरकार, ये खेत मुझे अपने ससुर बुलुआ से मिले थे।" अभी वह इतना ही कह पाया था कि तहसीलदार साहब ध्यान से उसकी ओर देखने लगे। जानकी कहता जा रहा था—"पहले खेतों मे इतनी पैदावार हो जाती थी कि लगान अदा करने में बहुत ज्यादा दिक्कत नहीं पड़ती थी। यों तो सभी किसानों के खेतों में पहले से अनाज की पैदावार घट गयी है; पर मेरे खेतों मे तो पैदावार बिलकुल ही नहीं हुई। फिर भी स्त्री के गहने बेचकर मैं लगान अदा करता

ोकर छोड़ना ही पड़ेगा। मैं अकेला क्या, हुजूर देख लेंगे, एक
-एक दिन सभी किसानों का यही हाल होगा।"

खेतों का अस्थायी बन्दोबस्त हो रहा था। तहसीलदा
ाहब ने कागज़ात देखकर जानकी की बात पर ध्यान देक
गान कम कर दिया। और जानकी के मुँह से निकल गया—
'सरकार की जय हो।"

इजलास से उठ कर जब तहसीलदार अपनी गाड़ी प
गले की ओर जाने लगे, तो रास्ते में जानकी देख पड़ा। गाड़
ड़ी करके उन्होंने उसको अपने पास बुलाकर पूछा—"अब त
ुश है न! लगान मैंने घटा दिया।"

जानकी तहसीलदार के पैरों पर गिर पड़ा। बोला—
सरकार ही तो हमारे माता-पिता हैं।"

रज्जन सोचने लगा—"यही हमारा देश है, यही हमार
ारूप, यही हमारी शिक्षा और यही हमारा अधिकार! एव
श्व है, और इसकी सभ्यता, उसका संघर्ष और उसकी उठने
ारने वाली राजनीति। और हमारा गौरव जिस वर्ग से ऊँच
ठना चाहिये, उसकी यह स्थिति है!"

निराशा और असन्तोष के आघात से तिलमिला उठा। एव
ाप-सा उसके भीतर फैलने लगा। किन्तु उसी क्षण उसे स्मरण
ा गयी ईश्वर की सृष्टि। तब भीतर की जलन घुलने लगी
ठास ऊपर उठने लगी और मुसकराते हुए वह बोला—
लेकिन पिछला बकाया लगान देना ही पड़ेगा, वह कैसे देगा।"

रञ्जन अनुभव कर रहा है—"ये लोग इसी तरह अपना सर्वस्व लुटा देते हैं। कब इनमें चेतना आयेगी? लेकिन बेईमानी का नाम तो चेतना नहीं है। कर्तव्य के क्षेत्र में आहुति भी चेतना का ही रूप है! आदर्शों के लिए मरने और मिटने वाली जाति भी कहीं नष्ट होती है?"

तब उसने कहा —"एं! गैया बेच डालेगा, तो बच्चे दूध के बिना भूखों न मरेंगे?"

जानकी देखने लगा कि तहसीलदार साहब जेब में हाथ डाल रहे हैं। आश्चर्य, दैन्य, कौतुक और हलचल के भावों से ओत-प्रोत वह बराबर उनकी ओर देखता रहा।

रञ्जन पर्स से दस-दस के तीन नोट निकालकर उसे देते हुए बोला—"ऐसा न करना। बक़ाया लगान इन रुपयों से चुका देना। समझा न!...और यह बात किसी से कहना नहीं, अच्छा?"

चकित स्तम्भित जानकी तहसीलदार की ओर देखता रह गया! कभी वह अपने भीतर कोई प्रश्न करता, कभी आप ही वह उत्तर भी दे लेता आखिर कुछ वाक्य उसके भीतर आप ही बनते और मिट जाते।—"ये हाकिम हैं कि भगवान्! ये कौन हैं? ये नोट हैं, रुपये है, या खाली कागज़ के टुकड़े? यह सब सपना तो नहीं हैं? हमारे सब हाकिम ऐसे क्यों नहीं है? ये दारोगा, ये डिप्टी, ये कलक्टर, ये...। क्या ये सब ऐसे नहीं

इधर गाड़ी पर जाता हुआ रञ्जन अपने संकल्पों को बराबर दोहरा रहा था—"जो दिखाई नहीं देता, उसी को देखता रहूँ, जो सुनाई नहीं पड़ता, उसी को देखता रहूँ; जिनको कठिनाई से जान पाता हूँ; उनको सरलता से जान पाऊँ, जो स्मरण नहीं आते, किन्तु जिनका स्मरण ही ईश्वर की इस अखिल सत्ता की स्वीकारोक्ति है, जो पास आते भयकातर हो उठते हैं, उनको गले लगाता रहूँ, और स्मृति के अगाध सागर में जिन की एक हिलोर तक आज दुर्लभ है; उन्हीं में स्वयं लहर बन कर लहराता रहूँ—हे परम पिता, तू मेरे जीवन-दीपक में ऐसी ही ज्योति जलाये रख !"

गाड़ी चली जा रही है। और बारह वर्ष पूर्व की एक घटना रञ्जन के सामने है :—

एक नन्ही-सी बालिका, तरकारी बेचनेवाले काछियों के बीच चुपचाप बैठी हुई उसको सामने देखकर कह रही है—"बाबू बथुआ ले लो बथुआ।"

उसका पिता बीमार था, उसकी माँ अन्धी।

बहन

आज शुक्रवार का दिन है। है न शुक्रवार ही हाँ, ठीक तो है। कल वृहस्पतिवार था, आज शुक्रवार है। बस, आज ही का दिन था। मैं सबेरे उठकर, धोती बगल में दबाये नंगे बदन और नंगे पाँव गङ्गा स्नान को सरसैया-घाट की ओर जा रहा था। वर्षा के दिन थे सही, तो भी कई दिनों से न तो पानी ही बरसा था, न उस दिन बदली ही थी। सबेरा अभी हुआ ही था जल्दी चलने के कारण शीतल समीर के मन्द-मन्द झोंके मेरे शरीर मे लिपट-लिपटकर मुझे लहरा जाते थे। बड़ा ही सुहावना समय था। जैसा सुहावना वह समय था, सच जानो भैया, मेरा मन भी, बस, वैसा ही निर्विकार था। कहीं भी किसी प्रकार की चिन्ता मेरे मन में न थी; वैसी कोई जगती हुई इच्छा भी कहीं न तो साकार रूप मे देख पड़ती थी, न निराकार किंवा नीरव रूप में ही। स्त्री का स्वर्गवास हुए कई वर्ष बीत गये थे। बड़ा लड़का अब कमाने-खाने लगा था। वह एक स्कूल में अध्यापक हो गया था। छोटी कन्या श्यामा का ब्याह हुए पूरे तीन वर्ष बीत गये थे। उसका गौना भी हो चुका था। और कोई सन्तान न थी। यदि उस समय मेरी यह लीला भी समाप्त हो जाती, तो कोई बात मेरे लिये दुःख किंवा पश्चात्ताप की न होती। अब आप यह अच्छी

ही एक कनक-वर्ण रमणी एक ओर सड़क पर बैठ अधलेटी कराहती हुई, मुझे देख पड़ी। अजी, यह तो संसार है। यहाँ तो यह सब है ही। इसमे नई बात क्या ?—सोचकर पहले तो इस रमणी की उपेक्षा करते हुए, उसकी ओर बिना देखे ही आगे बढ़ गया; पर थोड़ी ही दूर जाकर मुझे अपने मन मे इस भाव को दबाना ही पड़ा। कारण, ठीक उसी समय मेरे अन्तराल के भीतर एक दुन्दुभी-सी बज उठी। जैसे चपला रानी गहरी अन्धेरी रात मे आँगन में एक बार कौंध उठती है वैसे ही मेरे भीतर की चपला एक बार मुझे अच्छी तरह से झकझोर गई। ऐसा ज्ञान पड़ा, जैसे मनुष्यता से नीचे गिरकर मैं पशु जगत् की बात सोचने लगा था। घृणा की घृणा एक छोर से दूसरे छोर तक मेरे अन्तर में भर गई। कोई कहने लगा—जैसे चाबुक मेरी पीठ पर कसकर लगा गया हो—ये संसार के पीड़ित, व्यथित, घायल हृदय है; इनके प्रति उपेक्षा क्यों ? ये तुम्हारे कुटुम्बी है, तुम्हारी बहनें हैं, बेटियाँ हैं, इनसे घृणा क्यो ?

यह सोचना था कि मैं लौट पड़ा। देखा—उसका गोरा-सा, फूल-सा, पत्ती-सा, सुन्दर किन्तु कुम्हलाया हुआ मुख है; मैली, पंकवर्ण की धोती-मात्र उसके शरीर से चिपकी हुई है, जिसमें यत्र-तत्र रक्त के एक दम पक्के पड़े हुए दाग है। एक नवजात शिशु को वह अपनी छाती से चिपकाये हुए है।

मुझे निकट पाकर वह कुछ झिझकी, कुछ शरमाई। पहले उसने मेरी ओर एक बार सिर से पैर तक देखा, फिर मुँह नीचे

दो-एक मिनट तो मैं उसे इकटक, स्तब्ध और मूर्तिवत् खड़
कर देखता रहा। फिर जब अस्तव्यस्त हो उठा, तो मैंने उससे
ा—बहन, क्या तुम्हारे कोई नहीं है? क्या अभी-अभी सड़
किनारे ही तुमने यह बच्चा जना है? क्या पेट मे बहुत
ा है?

आपने सुना मैंने एक साथ ही उससे तीन प्रश्न कर डाले।

उसने उत्तर में कुछ न कहकर एक बार फिर मुझे देखा, ए
र फिर वह पीड़ा से विह्वल हो उठी। एक क्षण के अनन्त
ने अपना पेट एक हाथ से दाबे हुए कहा—भैया, मैं ए
खिया नारी हूँ; मेरे कोई नहीं है।

और, इसके बाद वह रोने लगी। मैं किंकर्तव्य-विमूढ़ होक
हीं खड़ा रह गया। न मुझसे कुछ कहते बना, न कुछ क
का। लेकिन भला तुम्हीं सोचो, मैं बिना कुछ किये कै
ता। एक तेज़ इक्का ले आया। उसे उठाकर, सहारा देक
न पर बिठाया और अपने घर ले आया।

अब वह मेरे घर में रहने लगी।

*　　　*　　　*

बहुत दिनों तक तो कनक मुझ से शरमाती रही। क
ास तक वह अपने हृदय की बातें मुझ से छिपाये रही।
र का सारा काम उसने अपने हाथों में ले लिया। वह घर

नी लीन रहती कि मुझसे एकान्त में मिलने या बातें कर
उसे अवसर ही न मिलता था।

बच्चे का नाम उसने अपनी इच्छानुसार रक्खा था 'स्वरू
र स्वरूप अपने हिलते हुए दाँतों, अपनी आनन्द-विमोह
लकारियों और अपनी कल्लोलमयी बाल-क्रीड़ाओं के कार
हृदय का राजा बन बैठा। दफ्तर से लौटकर ज्योंही मैं घर
रखता, त्यों ही स्वरूप मेरी गोद में आने के लिये अपने दो
थ ऊपर उठा देता। गोद में लेकर मै उसे हृदय से चिपक
ता। उसकी चुम्मी लेता, उसकी पीठ पर थपकियाँ दे-देकर उ
ाता, गुदगुदाता और सदा प्रसन्न रखने की चेष्टा करता।

कनक मुझसे कहा करती—भैया, स्वरूप मुझे उतना न
हता, जितना तुम्हे! यह क्या बात है?

कनक की यह बात मुझे बहुत अच्छी लगती। जिस सम
इस तरह की बात करती, मैं उसकी ओर आकृष्ट हुए बि
रहता। जैसे ही मैं उसकी ओर देखने लगता, वैसे ही व
नी शरमीली आँखे नीचे की ओर झुका लेती और तब मैं
ाँ उसके पास से इधर-उधर हो जाने की सोचने लगता।

कई मास बीत चुके थे। एक अपरिचित रमणी को अप
लाकर मैंने बड़े साहस का काम किया था। बार-बा
हृदय में विभिन्न प्रकार के सन्देह-जनक प्रश्न उठते रहते थे
सी का समाधान होता, किसी का न होता। अन्त में
च-साचकर तय कर लेता कि कुछ भी हो, जब मैंने उ
श्रय दिया है, तब वह मुझे धोखा तो दे ही नहीं सकती।

उसके स्वास्थ्य में बड़ा ही गम्भीर परिवर्तन हो रहा था। दिनों दिन उसका रूप-लावण्य निखर रहा था।

इतने दिन बीत गये थे, परन्तु किसी भी दिन मुझे उसकी बीती बातों के सम्बन्ध में उससे कुछ भी जानने का न तो अवसर ही मिला था और न मैंने स्वयं ही इसकी चेष्टा की थी। उसके और मेरे बीच में यही एक बात थी, जिसके कारण उसकी आँखों का शील—उसकी आन्तरिक लज्जा—अभी तक कुछ संकोच किंवा झझक रखती आ रही थी।

कनक सदा प्रसन्न रहा करती थी, तो भी उसकी प्रसन्नता का रूप भीतर-बाहर एक-सा एक-रस न था। सच बात तो यह थी कि वह बाहर से प्रसन्न रहने की चेष्टा करती रहती थी। बहुत दिनों तक मैं यह बात न जान सका कि कनक क्यों इस प्रकार सदा हँसती-सी रहा करती है। कारण चाहे जो कुछ हो; पर एक दिन मुझे यह बात मालूम हो ही गयी। एक दिन मैंने उसकी आँखों पर आँसुओं के सूखे हुए बूँद देख ही लिये।

कनक उस समय अपने 'स्वरूप' को खिला रही थी। आप जानते ही हैं, नारी हृदय के सुख की चरम सीमा उसके अपने प्राणोपम बच्चे पर स्थिर रहती है। सो उस समय कनक प्रसन्नता के मारे विहँस रही थी। उसी समय, जब वह अत्यधिक प्रसन्न देख पड़ रही थी, उसके कपोलों तक आये और सूखे हुए आँसुओं पर मेरा ध्यान एकाएक अटक गया।

तत्क्षण मैंने कनक की ओर देखकर, एकदम स्थिरचित्त कर उससे पूछा—कनक, इतने दिन हो गये ; ——— —

एकाएक मेरे इस प्रश्न को सुनकर कनक कुछ अप्रतिभ हो गयी। परन्तु उसने तुरन्त अपने आपको सम्हाल लिया। वह बोली—हाँ भैया, अभी तक कभी ऐसा संयोग ही नहीं आया कि मैं इस विषय में तुमसे कुछ कहती। मैं सदा यही सोचा करती थी कि तुम्हारा यह कैसा विचित्र किन्तु देवोपम मन और स्वभाव है कि एक अपरिचित नारी भी तुम्हारी शरण में इतने अधिक सुख-संतोष के साथ अपना जीवन-यापन कर सकती है। सचमुच मैं तो यह सोच भी न सकती थी कि कोई ऐसा भी पुरुष हो सकता है, जो मेरी जैसी परिस्थिति में मुझे आश्रय देकर फिर कभी उसके सम्बन्ध में यह तक जानने की चेष्टा न करेगा कि आखिर उसका अपना इतिहास क्या है?

मुझे ऐसा जान पड़ा, जैसा मैं अपने स्थान से गिर गया हूँ। कितना अच्छा होता, यदि मैंने उसके इस संशय को–इस कल्पनातीत आदर-भाव का—ज्यों-का-त्यों अक्षुण्ण ही रक्खा होता।

वह बोली—लेकिन अभी वह समय आया नहीं है। आज आपने मेरे अतीत को जानने की इच्छा प्रकट कर दी, यह अच्छा ही हुआ। अब किसी दिन मैं स्वयं ही वे सब बातें आपको बतलाऊँगी। आपको उतना अधीर भी नहीं देख रही हूँ। ऐसी बात होती, तो इन बातों की जानकारी आप पहले ही हैन प्राप्त कर लेते।

* * *

उस दिन कनक ने वह बात कुछ काल के लिए स्थगित तो र दी, लेकिन मेरे मन की ...

ाताना चाहती ? क्या कोई बात सचमुच रहस्य की है औ
काल उसे प्रकाश में ला देना अनिष्टकर है ?

मैं दिन-रात यही सोचने लगा। ज्यों-ज्यों मैं इस प्रश्न प
-ही-मन विवाद करता, त्यों-त्यों मेरा मन अस्थिर हो
ता था।

एक सप्ताह इसी तरह बीत गया। अब मुझसे रहा न गया
उसे उस बात के स्मरण दिलाने का निश्चय कर लिया
; सोचकर, कुछ ठहरकर, मैं कनक के निकट गया, तो देखत
ा हूँ, कनक सिसक-सिसक कर रो रही है।—स्वरूप ए
र पालने में सो रहा है।

कनक को रोते हुए देखने का यह मेरा पहला ही अवस
। सो उसे इस दशा में देखकर मैं ज़रा ठिठक गया, चुपचा
ाज़े की ओट में खड़ा हो गया। इस दशा में खड़े हुए द
नट से अधिक हो गये। पर न तो मैं आगे ही बढ़ सका,
े हट सका। अन्त में मेरे हृदय की दशा कुछ ऐसी हो गय
.मुझ से वहाँ खड़ा नहीं रहा गया। जैसे ही मैं वहाँ से लौट
ा, कनक ने आगे बढ़कर पूछा—कौन ? भैया ?

मैंने खड़े होकर ज़रा-सा घूमकर कह दिया—हाँ, मैं ही हूँ।

कैसे आये और कैसे चल दिये ?

यों ही चला आया था। कोई विशेष बात नहीं।

हूँ, सो तो जानती हूँ। लेकिन यदि आज आपको अवका
तो अपनी कथा आपको सुना जाऊँ।

जी दुःखी है, सो क्या हुआ !—जी तो दुखी-सुखी रहा ह करता है। मेरे इस जी की बात को जाने दीजिए। चलि उधर बैठिए। वहीं मैं आपको अपनी कथा सुनाऊँगी।

अपनी बैठक में एक कुरसी डालकर मैं बैठ गया। सामने आराम कुरसी थी। उसी पर मैंने उसे बैठ जाने को कह दिया। मैंने इस समय कनक को बहुत ध्यान से देखा। उसके कुन्दन वर्ण मुख पर लालिमा छायी हुई थी। उसकी बड़ी-बड़ी सलोनी आँखें रक्तमयी हो रही थीं। ऐसा जान पड़ता था, जैसे उनसे आग की चिनगारियाँ-सी निकल रही हैं।

बैठते ही उसने कहा—मेरे कहने पर जरा भी दुखी न होइएगा। यह मैं पहले से चिताये देती हूँ। नहीं तो मुझे बड़ा दुःख पहुँचेगा और फिर उसका न-जाने क्या परिणाम हो ?

पास ही टेबिल पर एक नक्काशीदार पत्थर का पेपरवेट रक्खा था। अपने संयम को उसी में उलझाते हुए उसने कहना शुरू किया—

कभी मेरा जीवन बहुत ही सुखी था। चिड़ियों का चह-चहाना, पत्तियों का डोलना, कलियों का खिलना, सुकुमार पुष्प-दलों का बिखरना, कोयल के बोल, मयूरों का नर्तन, मृगछौनों का भोलापन, सरिता की कल्लोलमयी धारा, बालुकामय कगारों का सहस्र-धाराओं से झरना और विस्मयोत्पादक चित्रांकण करना, बच्चों का हँसना-किलकना, नवविवाहिता ललनाओं का सखियों से इठलाना, प्यार की बातें, चाँदनी रातें, वर्षा की रिम-झिम, संध्या का समीरण, उषा का मौन गान

खाने-पीने, पहनने-ओढ़ने की कमी न थी। बालिका-विद्यालय की छाया के तले मैंने बहुत कुछ पढ़ा, सीखा और समझा। संसार में सभी कुछ अच्छा और सुन्दर प्रतीत होता था। जहाँ कहीं भी मेरी दृष्टि जाती, वहाँ मुझे आमोद-प्रमोद और उल्लास-ही-उल्लास नजर आता।

जैसा सुखी मेरा जीवन था, वैसा ही मेरा सौभाग्य भी था। मेरे पति देवोपम थे। वह मुझे चाहते ही नहीं थे, मुझ पर प्राण न्योछावर करने को प्रस्तुत रहते थे। मुझे कभी उदास तो देख ही न सकते थे। कभी-कभी ऐसा अवसर आया कि एक-आध दिन को मेरी तबियत जरा खराब हो गयी, तो उन्होंने अपना सारा काम-धाम छोड़ दिया। मैंने उपवास पीछे किया, उन्होंने पहले। मैं दूध पीती तो वह भी दूध पी लेते। मैं जरा संतरे का रस चूसती, तो वह भी मेरे समक्ष उतना ही रस चूस लेते। मुझे उनके इस स्वभाव को देखकर कभी-कभी झुँझलाहट होती; मैं बिगड़ने लगती, तो वह कहते—तुम चाहे जो कुछ सोचो कनक, लेकिन मेरा सुख इसी में है। मैं इसी तरह प्रसन्न और सन्तुष्ट रह सकता हूँ। मेरे जी में सदा यही बात समायी रहती है कि मैं तुम्हीं में आत्मसात् होकर रहूँ। विधाता ने मनुष्य का जीवन भी कैसा विचित्र बनाया है। मनुष्य जो चाहता है, वह कर नहीं सकता। यही देखो कि हमको और तुमको अलग-अलग बनाने की जरूरत क्या थी उसे! अरे, एक ही बनाया होता। और यदि अलग-अलग शरीर बना ही दिये थे, तो इतनी तो शक्ति और देता कि हम तुम दोनों आत्मा और शरीर दोनों से एक होकर रहते।

मैंने कहा—जाने दो इस प्रसङ्ग को। और बातें करो।

वह उसी तरह रोती हुई बोली—जाने कैसे दूँ इन बातों को ! मेरी यही तो सब बातें हैं।

अब उसने अपनी आँखें पोंछ डालीं। जरा देर ठहरकर उसने फिर कहना शुरू किया— हाँ, तो मैंने आपको अभी बत-लाया कि वह कहने-भर को ही नहीं, सचमुच देवता थे। जब तक जीवित रहे, तब तक मैं उनका मूल्य न समझ पायी। मैं उन्हें चिढ़ाती रही, उन्हे खिझाती रही और उनको कभी-कभी कष्ट भी देती रही। मैं चाहती थी कि वह अपने नौकरों को डाँटें, उन्हें गालियाँ दें, उन्हें ठोकर मार-मारकर अपना रोब दिखलाएं। मैं चाहती थी कि वह अपने घर और भाइयों मे इतने बड़े और ऊँचे बनकर रहें कि कोई उनके सामने चूँ भी न कर सके। मै चाहती थी कि वह अपनी जमींदारी का कारबार कठोरता-पूर्वक चलाएँ और निरंतर अपनी जायदाद और मालियत बढाते रहे। मैं यह भी चाहती थी कि वह इतना सम्मान, सम्पत्ति और प्रतिष्ठा प्राप्त करें कि सचमुच राजा होकर रहें। मेरी इन सब इच्छाओं के लिए उनका उत्तर था—तुम यह सब क्या सोचती हो कनक ! तुम्हारी इन बातों को सुनकर मुझे बड़ा दुःख होता है। मनुष्य का जीवन इसलिए तो होता नहीं। मनुष्य ने यदि दूसरों को कुत्ता और चूहा समझकर, उनको रौंद-रौंदकर, उनके मुँह की रोटी छीन-छीनकर ही मान और प्रतिष्ठा का मिथ्या दंभ अर्जित किया, तो क्या क्या ? और यह सब वह करे भी तो कितने दिन के लिए और किसके लिए ?

न बातों का महत्त्व समझ सकती ! मैं नहीं जानती थी कि जं
,मन्त इतना अधिक मोहक रूप-सौरभ बिखेरते हैं, उनकी जीवन
ेला क्षणिक होती है। जब वह कहते थे कि "कनक, तुम मेरी
ीवन-सरिता हो, मेरे साथ-साथ प्रवाहित होती चलो" तब
तो इस बात की कल्पना तक न कर सकती थी कि एक समय
सा भी आयेगा, जब मै उन्हें निधन होते हुए देखूँगी...। एक
न उन्होंने यह भी कहा था—कनक, मैं चाहता हूँ, तुम इस
ग्य तो बन जाओ कि इस जगत् के मिथ्या एवं सत्य स्वरूप
ो समझ सको; संसार में क्या है और क्या नहीं है, इसको
च्छी तरह जान सको। मै नहीं जानती थी कि उनके इस
थन का तात्पर्य यह है कि 'यदि मैं न भी रहूँ, तो भी तुम
पने-आपको सम्हाल सको।' परन्तु मै तो अपने जीवन के
समय स्वप्नो की क्रीड़ा में ऐसी लीन थी कि मुझे इन आलोक
ेश्मयों का भान तक न हुआ। एक दिन वह बहुत थके-माँदे
ाये और आते-ही-आते पलँग पर लेट गये। मुझसे बोले—
नक, आज मेरे सिर मे भयंकर दर्द हो रहा है। कहीं जाना
हीं, यहीं मेरे पास बैठना।

उनका इतना कहना था कि मेरे प्राण सूख गये। बार-बार
निष्ट के काल्पनिक चित्र मेरी आँखों के सामने आने और जाने
े। ओरियंटल बाम आदि सिर दर्द की अनेक शीशियाँ खोल
। मैं बराबर उनके सिर की मालिश करती रही, यकायक
ाकी आँखे झप गयीं तो मैंने समझा, उनको कुछ शान्ति मिली
[illegible]

ठी गयी, फिर आयी और जरा देर बाद फिर चली गयी सी प्रकार दो घन्टे बीत गये।

उस समय सायङ्काल के सात बज गये थे। रजनी का न्धकार सर्वत्र फैल गया था। लैम्प के प्रकाश में मैंने देखा— नके मस्तक पर पसीने की बून्दें झलकने लगी हैं। एक प्रकार ा सन्तोष-सा हुआ, सोचा—अब तबियत ठीक हो रही है। र ज्यों ही मैंने उनके शरीर पर हाथ रक्खा, त्यों ही देखती क्या कि शरीर तो आतप से जल रहा है। तुरन्त वैद्य बुलाया, फिर ाक्टर बुलाये; पर रात-भर उन्होंने आँख न खोली।

सवेरा हुआ और पाँच बजे। यकायक वह चेतन हुए, उस समय उनके बदन का आतप भी शान्त हो रहा था। मैंने पूछा— कैसी तबियत है? उन्होंने पहले तो कहा—अच्छी है, फिर कुछ सोचने और पुनः कुछ कहने की चेष्टा की; फिर ठहर-ठहर कर बोले—मैं बहुत थोड़े दिनों के लिए तो आया ही था, पर मुझे दिन बहुत लग गये। अब मैं जाता हूँ। बहुत दूर जाना है। तुम— तुम मेरे साथ न चल सकोगी। पीछे से आना। मेरे लिए दुखी न होना। जब हम पाते हैं, तब यह नहीं सोचते कि कैसे पा गये? किस प्रकार कितने काल के लिए पा गये? तब यही क्या सोचें कि हाय, कुछ न हुआ—कुछ न किया। यदि जानते कि ऐसा होगा, तो यह कर लेते, वह कर लेते। हम आगे की बात तो तब जानते हैं, जब वह वर्त्तमान में आ जाती है। तो फिर जब वर्त्तमान में अतीत का भविष्य आता है तो वर्त्तमान के भविष्य को हम क्यों भूल जाते हैं? मैंने तुमको अपने जीवन मे

जीवन से ही तुमको वैसा बना सकूँ । और जैसे हमारा अं
हारा संयोग हुआ, वैसी ही जीवन और अजीवन का
योग तो होता है । मुझे पूरी आशा है, मेरा अजीवन तुम
वन देगा । बस, इतना कहना था कि उनका शरीर प्राणहं
गया !

*　　　*　　　*

सचमुच, जैसा उन्होंने कहा था, ठीक वैसा ही हुआ ।

कुछ दिनों से सन्तान की माया ने मुझे आच्छन्न कर रक्ख
। मैं सन्तान की लालसा में निरन्तर उन्मन रहने लगी थी
, मैं तुमको कैसे समझाऊँ कि उन दिनों मैं सन्तान के लि
कुल पागल हो गयी थी । और घटना-चक्र तो जरा देखं
स वर्ष उनके जीवन का अवसान होने जा रहा था, उसी व
गर्भ रह गया, मेरे सामने उस समय आशाओं का मह
गर लहराया करता था। सुनहले स्वप्नों के हिन्डोलों में ही
ा झूलती रहती थी सो मैंने यह सुख भी उपलब्ध किय
न्तु कब ? जब वह, मेरे प्राणों के प्राण, मेरे जीवन के आधा
संसार से उठ गये । उनकी इहलीला जिस दिन समाप्त हु
ो के दूसरे दिन मैंने पुत्र का मुख देखा । तब मुझे याद अ
ा कि उन्होंने कहा था—मेरे अजीवन से तुम्हे जीव
देगा । अब जरा तुम्हीं सोचो, उन्होंने कितनी स
ा कही थी !

परन्तु सच पूछो तो उनकी सच्ची बात को मैं उस समय

कितनी सौभाग्य शालिनी होती ! परन्तु मेरा यह सोचना भं
ाुक सिद्ध हुआ । हाय मेरा जीवन, मेरी आशा, मेरा सर्वस्
पुत्र भी चल बसा ! लेकिन तब मैंने जीवन पाया ! जान
कैसे ? मैं पागल होगयी !

पगली के लिये सारा संसार सपना है । जिस बच्चे को व
ती है, वही उसका अपना होता है । इसी प्रकार वह जिसक
हती है उसी को अपना पति, भाई और बन्धु बना लेती है
झ लेती है, और मान लेती है, सभी उसके अपने सगे हो
उसके लिए संसार में कोई दूसरा नहीं है—कोई उसका श
ीं है । सो भैया, तुमको यह जानकर आश्चर्य होगा कि
ाल तो हो गयी, पर ज्ञान का आलोक मेरे रोम-रोम मे भि
ा । अब मैंने समझा कि जीवन क्या है, मृत्यु क्या है, औ
त्र क्या है ?

अपनी उस अवस्था में कितने जङ्गल, कितने निर्जन मैदान
, नदी-नाले मैंने पार किये, कैसे बताऊँ, क्या बताऊँ औ
लाने की जरूरत ही क्या है । अन्त मे मैंने देखा कि मुझ
न का अभाव नहीं है, केवल संसार का प्रभाव मुझ पर है
अपने ऊपर पड़े हुए संसार के उस प्रभाव को भी धीरे-धी
शान्त कर डाला । मैं विधवा हूँ तो क्या हुआ, निस्सन्ता
तो क्या हुआ ! मैं कुछ हूँ तो । और मेरे लिए इतना ही कौ
म है । यदि मैं हूँ, सत्य में हूँ, सुख-दुख से परे हूँ, पूर्ण-अपू
मुक्त हूँ, तो यही बात मेरे अस्तित्व के लिए कौन कम है

तुम यह बच्चा जो मेरी गोद में देखा करते हो, इसे भी मैंने अपनी इच्छानुसार पाया है। यह मुझे एक निर्जन, मल-मूत्र से भरे कूड़े खाने में अचानक मिल गया। मैंने इसे देखा और तुरन्त कह दिया—तू यदि मरा भी हो तो भी मेरे लिए जी जा। सौभाग्य से वह जीवित निकला और तुम इसे इस अवस्था में देखते ही हो! इसी प्रकार मैंने समझ लिया है—मेरे प्राणों के प्राण कहीं-न-कहीं होंगे ही, उन्होंने कहीं-न-कहीं तो जन्म लिया ही होगा। तो फिर मैं विधवा कैसे हुई! न, न, मैं विधवा नहीं हूँ, मैं तो चिर सौभाग्यवती हूँ!

उस दिन तुमने मुझे वहाँ पेट की पीड़ा से कहराती हुई पाया था न। पर ऐसी बात वास्तव में न थी। वह तो मेरी आकांक्षा का एक रूप था। ऐसा न होता, तो मेरे अन्तस्तल से इस बच्चे के लिए तत्क्षण दूध की धारा कैसे फूट पड़ती!

* * *

निंदिया लागी

कॉलेज से लौटते समय मैं अक्सर अपने नये बँगले को देखता हुआ घर आया करता। उन दिनों वह तैयार हो रहा था। एक ओवरसियर साहब रोजाना, सुबह-शाम, देख-रेख के लिए आ जाते थे। वे मंझले भैया के सहपाठी मित्रों में से थे। लम्बा क़द, गौर वर्ण, लम्बी नाक—खूबसूरत—और मुख पर उल्लास का अभिनव आलोक। गम्भीर भी होते तो प्रायः मालूम यही होता कि मुस्करा रहे हैं।

नाम उनका बेनीमाधव था। अवस्था अब पैंतालीस वर्ष से ऊपर जान पड़ती थी। मिस्त्री और मजदूर, सब मिलाकर, कोई पचीस-तीस व्यक्ति काम कर रहे थे। मजदूरों में कुछ स्त्रियाँ भी थीं।

एक दिन मैंने देखा, छत कूटी जा रही है। कूटनेवालों में स्त्रियाँ ही हैं अधिकांश रूप से। दो पुरुष भी हैं; लेकिन वे जरा हटकर, एक कोने में हैं। स्त्रियाँ छत कूटती हुई एक गाना गा रही हैं। यों उनका गायन कुछ विशेष मधुर नहीं है; किन्तु अनेक साधारण सम्मिलित स्वरों के बीच में एक अत्यन्त कोमल स्वर भी है। तभी मैं उनके पास जाने को तत्पर हो गया। मुझे देखना था कि वह जो गाना गा रही है जिसका कण्ठ इतना

एकाएक पहले तो ओवरसियर साहब सामने आ ग
ले—आ गये छोटे भैया !

मैंने उनकी ओर देखकर ज़रा-सा मुस्करा दिया और कहा
न तो मुझे भी ऐसा ही पड़ता है।

तब हँसते हुए उन्होंने कहा—लेकिन दर-असल आप अ
ीं। आप समझते हैं कि दुनिया की नजरों में जो आप य
जूद हैं, इतने से ही मैं यह मान लूँ कि आप पूरे सोलह-अ
आ गये हैं। और जो कहीं आप अपना 'कुछ' छोड़ आ
तो ?

वे तब इतना कहते-कहते मेरे निकट, बिल्कुल निकट अ
: बोले—जब मैं अपने इंजीनियरिंग कॉलेज में पढ़ता थ
मैं कैसा था, सच जानिए, आपको देखकर जब मुझे उस
द आ जाती है तो जी मसोसने लगता है। तबीअत चाहत
के अपने को क्या कर डालूँ, जिससे कुछ शान्ति मिले
कन फिर यही सोचकर सन्तोष कर लेता हूँ कि मनुष्य व
शा का अन्त नहीं है। न आकाश में, न महासागर के अत
न गिरि-गह्वर में—संसार में कहीं भी, कोई ऐसा स्थान नह
म सकता, जहाँ पहुँचकर मनुष्य कामना से मुक्त हो सके।

बेनीबाबू के मुख पर अगमनीय गम्भीरता की छाप थी
पि अपने विमल हास से वे उसे छिपाना चाहते थे। मैं
—आप मेरे अध्ययन की चीज़ हैं, यह मुझे आज मालू
।

ी शान्त नहीं हो पाया था, इसलिए मैं उनके पीछे-पी
ा दिया।

घूमते, काम देखते हुए, एक मिस्त्री के पास जाकर वे ख
गये। वह आर्च (Arch) बनाने जा रहा था; बोले—देख
मिस्त्री, पत्तियाँ और फूल बनाना ही काफी नहीं है। टह
र उसमें उभड़े हुए काँटे भी दिखाने होते हैं। माना कि नक़
ल ही है, असल चीज़ वह कभी हो नहीं सकती: किन्तु ची
जो असलियत है, गुण के साथ दुर्गुण भी, नक़ल में यां
को स्पष्ट न किया जा सका, तो वह नक़ल भी नक़ल न
सकती। बनाने में तुमको अगर दिक़्क़त हो तो मैं नमूना
सकता हूँ; लेकिन मेरी तबीअत की चीज़ अगर तुम न बन
, तो मैं कह नहीं सकता कि आगे चलकर तुम्हें उसका क
ा भोगना पड़ेगा।

मिस्त्री वृद्ध था। उसके बाल पक गये थे। उसकी आँखों प
ानी चाल का चश्मा चढ़ा हुआ था। बड़े गौर से वह बेनं
ू की ओर देखने लगा; लेकिन उसने कुछ कहा नहीं। त
ोबाबू वहाँ और अधिक ठहर न सके।

अब वे आँगन में एक टब के पास खड़े थे। नल का पा
में गिर रहा था। मैं थोड़ा पीछे था। जब उनके निक
चा तो वे बोले—आपने इस मिस्त्री की आँखों को देखा? व
; कह नहीं सका था; लेकिन उसकी आँखों ने जो बात क
मैं उसे सहन नहीं कर सका। वह समझता है, मैंने फ
ाने की बात करके उसको चोट पहुँचाते ... ...

आदमी आपको ऐसे मिल सकते हैं, जो मुझे ग़लत समझते हैं। आज पन्द्रह वर्षों से, बल्कि और भी अधिक काल से, मुझे जहाँ-कहीं भी मकान बनवाने का काम पड़ा है, मैंने इस मिस्त्री को अवश्य बुलाया है। मैंने काम के सम्बन्ध में कभी-कभी तो उसे इतना डाँटा है कि वह रो दिया है; तो भी कभी ऐसा अवसर नहीं आया कि उसने मुझे तीखा उत्तर दिया हो। उसका वही पुराना चश्मा है, वैसी ही भीतर तक प्रविष्ट हो जानेवाली दृष्टि। उसने कभी मजदूरी मुझसे तय नहीं की। और कभी ऐसा अवसर नहीं आया, जब काम समाप्त हो जाने पर, मजदूरी के अतिरिक्त, उसने दस-पन्द्रह रुपये पुरस्कार में न प्राप्त किये हों। ...किन्तु इन सब बातों को अच्छी तरह समझते हुए भी डाँटना तो पड़ता ही है; क्योंकि उससे कलाकार की सुप्त कल्पना को जागरण मिलता है।

अब वेनीबाबू घूमते फिरते वहीं जा पहुँचे, जहाँ स्त्रियाँ छत कूट रही थीं। एकाएक जो उन्होंने हैटधारी हम लोगों को देखा तो उनका गाना बन्द हो गया। तब मेरे मन में आया कि इससे तो यही अच्छा था कि हम लोग यहाँ न आते। और कुछ नहीं तो यह संगीत का मृदुल स्वर तो कानों में पड़ता। और यह संगीत भी कैसा?—एकदम असाधारण। उसकी टेक कभी भूल ही नहीं सकती। जैसी नन्हीं, वैसी ही भोली!

'निंदिया लागी—मैं सोय गई गुइयाँ!'

वेनीबाबू ने खड़े खड़े, इधर-उधर देखा और कहा—देखो इधर इस तरह नहीं पीटना होता कि चोटों की आवाज़ का

रामलखन बोला—सरकार, आज कैसे पूरा होगा ? दिन ही कितना रह गया है !

बको मत, रामलखन ! काम नहीं पूरा होगा तो पैसा भी पूरा नहीं होगा। समझते हो न ? काम का ही दूसरा नाम पैसा है।

रामलखन चुप रह गया।

बेनीबाबू भी चल दिये; लेकिन चलने के साथ ही पिटाई की आवाजें, उनकी धमक, उनकी गति और चूड़ियों की खनक और "निंदिया लागी" का स्वर अतिशय गम्भीर हो गया। मैंने बेनीबाबू से कहा—आप काम लेना खूब जानते हैं।

वे हँसते-हँसते बोले—मैं जानता बहुत कुछ हूँ छोटे भैया, लेकिन जानना ही काफ़ी नहीं होता। ज्ञान से भी बढ़कर जो वस्तु है, उसको भी तो जानना होता है, और उसे मैं अभी तक जान नहीं सका।

मैंने पूछ दिया—वह क्या ?

वे बोले—सत्य का ग्रहण।

मैंने कहा—सिर्फ पहेली न कहिये, उसे समझाते भी चलिये।

वे तब एक पेड़ के नीचे, सड़क पर ही एक ओर कुर्सियाँ डलवाकर बैठ गये और बोले—ये स्त्रियाँ, जो यहाँ मजदूरी करने आई हैं, कितने सबेरे घर से चली हैं और कब पहुँचेंगी; कोई घर में अपने बच्चों को छोड़ आई है, किसी का पति खेत में काम करने गया होगा, किसी के कोई होगा ही नहीं, और काम करते-करते उनको अगर उनकी सुधि आ ही जाती है और —

क हम समझ लेते हैं कि हम बड़े ज्ञानी हैं । हम यही देखकर न्तोष कर लेते हैं कि जो स्त्री यहाँ पर मजदूरी कर रही है, म को सिर्फ उसी से मतलब है, उसी की मजदूरी हम दे रहे , किन्तु हम यह सोचने की जरूरत ही नहीं समझते कि वह त्री अपने जगत् को लेकर क्या है। जो बच्चा उसने उत्पन्न किया है वह भी तो अपने पालन-पोषण का भार अपनी माँ पर रखता है, पर हम लोग वहाँ तक सोचना ही नहीं चाहते। हमारे वार्थों ने सत्य को कितनी निरंकुशता के साथ दबा रखा है !

बेनीबाबू चुप हो गये। एक ओर खुले अम्बर में, विहँगालियाँ, अपने पङ्खों को फैलाये, नितान्त निर्बन्ध, हँसी-खुशी के साथ उड़ी चली जा रही थीं। एक साथ हम दोनों उधर खने लगे; किन्तु बराबर उधर देखने के बदले मैंने एक बार फेर बेनीबाबू को ही देखा। उनके मस्तक के ऊपर चँदवा खुल आया था। उसमें नन्हें-नन्हें एक आध बाल ही अवशिष्ट थे। अब सांध्य आलोक में चमक रहे थे। उनकी खुली आँखें यद्यपि चश्मे के भीतर थीं, तो भी मुझे प्रतीत हुआ, जैसे वे कुछ और भी फैल गई हैं। इसी क्षण वे बोले—अब यह काम और आगे न करूँगा, लेकिन......।

उनका यह वाक्य अधूरा रह गया। जान पड़ा, वे कोई निश्चय कर रहे हैं और रुक-रुक जाते हैं। रुक इसलिए नहीं जाते कि रुकना चाहते हैं। रुक इसलिए जाते हैं कि रुकना नहीं चाहते।

ी मैं कहना भी चाहता हूं कि आदमी तो अपने विश्वा
लेकर खड़ा है; लेकिन जो आदमी अपने विश्वासों
र भी नहीं खड़ा होता, वह भी क्या आदमी है ? वह आद
ीं है। वह पशु है—है पशु। लेकिन कैसे कहूँ कि पशु भी अप
श्वासों के विरुद्ध खड़ा हो सकनेवाला प्राणी है ! वह तो
तो, बल्कि अपनी प्रवृत्तियों का ही स्वरूप होता है। और य
ुष्य ? छिः, इससे भी अधम क्या कोई स्थिति है !

मैंने देखा, यह वातावरण तो अब अतिशय गम्भीर
ा है ! और उन दिनों इस तरह की निरी गम्भीरता मुझे ज
पसन्द आती थी; बल्कि साथी लोग जब ऐसे व्यक्तियों
ाक उड़ाते, तो उस दल में मैं भी सम्मिलित हो जाया करत
। उस समय हम सब यही मानते थे कि जीवन एक हँस
की चीज है। सर्वथा अनिश्चित और चरम अकल्प
वन के थोड़े-से दिनों को रोने या सोच-विचार में निपीड़ि
र्जीव कर डालने में कौन सी महत्ता है ?

इसीलिए मैंने कह दिया—इन लोगों के गाने में बीच
, हाँ, बस यह, स्वर मुझे बड़ा कोमल लगता है।

निमेषमात्र में, सम्यक् बदलकर, वे बोले—

'जाओ, नजदीक से जाकर सुन आओ। हैट यहीं र
ओ। फिर भी अगर वे गाना बन्द कर दें तो कहना—काम
हर्ज नहीं होना चाहिये; क्योंकि गाने के साथ छत कूटने
अधिक अच्छा होता है,' बेनीबाबू ने मुसकराते हुए कहा

मैंने कहा—तुम लोगों ने गाना क्यों बन्द कर दिया ?

खिलखिल के कुछ मदिर कलहास ! कभी इधर—कभी उध

किसी ने अपनी सखी से कहा, ज़रा-सा धक्का देकर-
री पत्ती, चुप क्यों हो गई ?

'तू ही क्यों नहीं गाती ? छोटे-भैया के सामने...'

'हूँ, बड़ी लाजवन्ती बनी है ! जैसे दुलहे का मुँह ही
। हो !'

मैंने कहना चाहा—लड़ो मत। मैं चला जाता हूँ। लेकि
कुछ कह न सका। चुपचाप चला आया। चला तो आय
तु उस खिलखिल और अपने सामने गाने से लजानेवा
पत्ती को मैंने फिर देखने की चेष्टा नहीं की।

कैसे उल्लास के साथ आया था; किन्तु कैसा भीषण छ
र चल दिया !

बेनीबाबू ने बड़े प्यार से पूछा—हाँ, कह जाओ।

मैंने कहा—क्या कह जाऊँ ? वही बात हुई। उन लो
गाना बन्द कर दिया।

'फिर तुमने वह बात नहीं कही।'

'मैं कुछ कह नहीं सका।'

'तो यह कहो कि तुम खुद ही लजा गये ?'

मैं चुप रहा। जिसने कभी चोरी नहीं की, जो यह भी न

वही गति मेरी हुई। क्या मैं जानता था कि बेनीबाबू मुझे ऐसी जगह ले जायँगे, जहाँ पहुँचकर फिर मुक्ति का कोई मार्ग ही दृष्टिगत न होगा ?

बेनीबाबू बोले—अच्छा, एक काम कर आओ। रामलखन से कहना, अगर आज यह काम किसी तरह पूरा होता न दीख पड़े तो कल ही पूरा कर डालना ठीक होगा। बेनीबाबू से मैंने कह दिया है कि मजदूरों से उतना ही काम लिया जाय, जितना वे कर सकें।

मैं उनकी ओर देखता रह गया। मेरे मन में आया—यह आदमी है कि देवता !

मुझे अवाक् देखकर उन्होंने पूछा—सोचते क्या हो ?

मैंने कहा—कुछ नहीं। इतने दिन से आपका परिचय प्राप्त है; किन्तु कभी ऐसा अवसर नहीं आया कि आपको इतने निकट से देख पाता।

वे बोले—यह सब कोई चीज नहीं है, छोटे भैया ! न्याय और सत्य से हम कितने दूर रहते है, शायद हम खुद नहीं जानते।...अच्छा जाओ, जो काम तुम्हें दिया गया है, उसको पूरा तो कर आओ।

मैं फिर उसी छत पर जा पहुँचा; पर अब की बार मैंने देखा, गान चल रहा है; लेकिन एक ही गाना तो दिन-भर चल नहीं सकता। तो भी मुझे उसी गाने के सुनने की इच्छा हो आई। साथ ही मैंने यह भी सोच [illegible]

मैंने जो रामलखन को बुलाया तो वह सिटपिटा ग
ला—छोटे सरकार, क्या हुक्म है ?

मैंने कहा—बेनीबाबू क्या तुम लोगों के साथ कुछ ज्या
ख्ती से काम लेते हैं ?

वह चुप ही बना रहा, सत्य-कृष्ण कुछ भी नहीं कह सक
। मैंने समझ लिया, डर के कारण वह उनके विरुद्ध कु
ना नहीं चाहता इसीलिए चुप है; लेकिन जब मैंने कहा—
से कुछ कहूँगा नहीं; मैं तो सिर्फ असल बात जान
हता हूँ। बिलकुल निडर होकर बतलाओ।

तब उसने कहा—काम सख्ती से लेते हैं तो मजदूरी
दो पैसा ज्यादा और वक्त पर देते हैं। ऐसे मालिक मिलें
जिन्दगी भर उनकी गुलामी करूँ।

मैंने कहा—तुम ठीक कहते हो। उन्होंने मुझसे कहला भेज
के अगर काम आज नहीं पूरा होता है तो कल ही पूरा क
लना। ज्यादा तकलीफ़ उठाने की जरूरत नहीं है।

रामलखन बोला—पर छोटे भैया; उन्होंने पहले ही बहु
च-समझकर हुक्म दिया था। काम अगर आज पूरा न होत
कूटने के लिये चूना कल हम लोगों को इस हालत में
तता। वह सूख जाता। तब उस पर कुटाई ठीक तरह
होती ? इसके सिवाय कल गुड़ियों का त्यौहार है—छु
दिन है। मैंने पीछे जो सोचा तो मुझे इन सब बातों क
ाल आ गया। काम पूरा हो जायगा। बहुत कुछ तो
गया है।

रामलखन की बात जानकर सचमुच मैंने बेनीबाबू से यह नहीं कहा कि कुछ स्त्रियों के हाथों में छाले पड़ गये हैं।

किन्तु उसी दिन, सायंकाल—

एक ओर जीने की दीवार गिर गई। छुट्टी हो गई थी। मज़दूर लोग इधर-उधर से आ आकर जाने लगे थे कि अररर धम् का भीषण स्वर और क्षीण 'आह !'

लोग दौड़ पड़े। लोग गिने भी गये। सब मिलाकर उन्तीस आदमी आज काम पर थे, लेकिन हैं केवल सत्ताइस !

—तो दो आदमी दब गये क्या ?

—हाँ, यह हल्का स्वर जो आ रहा है ! यह !···यह !

ईंटें उठाई जानें लगी तो एक स्त्री ने कहा—हाय, पत्ती है—पत्ती ! तभी मैं सोच रही थी—वह दीख नहीं पड़ती, शायद आगे निकल गई ! हाय यह तो चल बसी !

उससे कौन कहता कि हाँ, वह आगे निकल गई !

लेकिन एक क्षीण स्वर तब भी ध्वनित होता रहा !

—अरे और उठाओ ईंटों को। हाँ, इस खंजड़ को। अभी एक आदमी और भी तो है।

एक साथ कई आदमियों ने मिलकर एक दीवार के टुकड़े को उठाया। वह ईंटों के ऊपर गिरा था और बीच में थोड़ी जगह शेष रह गई थीं। उसी में मुड़ा हुआ अचेत मिला रिधर।

उस बँगले को, फिर आगे बेनीबाबू नहीं बनवा सके। त्रु
रों तक काम बन्द रहा और वे बीमार पड़ गये।

मनुष्य का यह जीवन क्या इतना अस्थिर है ? क्या य
के दल से भी अधिक मृदुल है ? क्या वह छुई-मुई है ? व
ों मैं यही सोचता रहा था। वे बीमार थे, और उन
ारी बढ़ती जाती थी। मैं देख रहा था, शायद बेनीबा
ारी कर रहे हैं। लेकिन एक दिन मैंने उन्हें दूसरे रूप में देखा
देखा कि मृत्यु को उन्होंने मसल डाला है, पीस डाला है
छटपटा रही है ! वह भाग जाना चाहती है !

वे एक पलँग पर लेटे हुए थे, बहुत धीरे-धीरे बातें कर र
उनके पास एक नौजवान बैठा हुआ था। वह मौन थ
र बेनीबाबू उससे कुछ पूछ रहे थे। उसी क्षण मैं पहुँच गया
उठने को हुए तो नौकर ने उन्हें उठा दिया और उनके पी
कये लगा दिये। पहले आँखों पर चश्मा नहीं था; अब उन्हो
मा चढ़ा लिया।

संकेत पाकर मैं उनके पास ही कुरसी डालकर बैठ गया था

वे बोले—सुनते हो मुल्लू, मैं तुमको रोने न दूँगा। रो
तो मै अपने को खो दूँगा; लेकिन मैं इतना सस्ता नहीं हूं
मरना नहीं चाहता। इसीलिए मैं तुमको प्रसन्न देखना चाहत
बतलाओ, तुम किस तरह से प्रसन्न हो सकते हो ? मैं औ
क कर दूँ ? मैं तुमको कुछ देना चाहता हूँ। बोलो, तु
तने रुपये पाकर खुश हो सकते हो ? लेकिन तुम यह सोच

लीवन की। लेकिन मैंने अभी तुमको बतलाया न, मै तुमको
करना चाहता हूँ।

—ओह 'एक नवयुवती—एक सुन्दरी !'

—तो क्या पत्नी सुन्दर थी ?

—तो उसका कंठ ही कोमल न था, वरन......

बेनीबाबू बोले—मैं जानता हूँ, तुम कुछ कहोगे नहीं
छा, तो मैं ही कहे देता हूँ—उसके बच्चे की परवरिश
, दस रुपये हर महीने मुझसे बराबर ले जाया करना
मे ! .....यह लो दस रुपये ! आज पहली तारीख है। ह
ने की पहली तारीख को ले जाया करना—अच्छा !

जेब से नोट निकालकर उन्होंने मुल्लू के आगे फेंक दिया
लू तब कितना खुश था, इसको मैंने जाना; किन्तु बेनीबा
जितना कुछ जाना, उसको मैं न जान सका।

मुल्लू जब छलकते आनन्दाश्रुओं के साथ चल दिया
बाबू बोले—मेरा ख़याल है, अब यह खुश रहेगा। क्य
क्या सोचते हो ?

मैं चकित था, प्रतिहत था, अभिभूत भी था, तो भी मै
दिया—आपने यह क्या किया ?

'ओह, तुम मुझसे पूछते हो, छोटे भैया !—मैंने यह क
या ? यह मैंने अपने को भुलाने के लिए किया है; क्यों
ुष्य अपने को भुलावे में रखने का अभ्यासी है। मैंने देखा-

पको भुलाना पड़ता है ! यह मेरा ऐसा ही क्षण है, लेकिन
मेरी भूल नहीं है, यह तो मेरा नवजीवन है—जागरण ।

यह कथा यहीं समाप्त हो गई है; किन्तु इस कथा के प्राण में
अन्तर्कथा है, उसी की बात कहता हूँ । उपर्युक्त घटना के
छे कुछ वत्सर और जुड़ गये हैं । यह बँगला अब मुझे रहने
लिए दिया गया है । मैं अब अकेला ही इसमें रहता हूँ । क
हस्र पुस्तकों के महत् ज्ञान से आवृत मैं—लोग कहते हैं—
फेसर हूँ । जीवन और जगत् का तत्त्वदर्शी ! लेकिन मैं अपनी
मस्या किससे कहूँ—अपना अन्तर किसको खोलकर दिख
ऊँ ? बच्चे सुनें तो हँसें और बीबी सुने तो कहे—पागल ह
ये हो !

कभी-कभी रात के घोर सन्नाटे में स्वप्नाविष्ट-सा मैं कुछ
स्पष्ट ध्वनियाँ सुनने लगता हूँ । कोई खिलखिल हँस रही है
ोई धक्का देकर कह रही है—गा री पत्ती ! और चूड़ियाँ खनक
ठती हैं, छत कुदने लगती है और एक कोमल, अत्यन्त कोमल
ायन स्वर फूट पड़ता है—निंदिया लागी......।

और उसके हाथों में जो छाले पड़ गये हैं, वे वहाँ से उठक
रे हृदय में आकर चिपक गये हैं !

मिठाईवाला

बहुत ही मीठे स्वरों के साथ वह गलियों में घूमता हुआ कहता—"बच्चों को बहलानेवाला, खिलौनेवाला।"

इस अधूरे वाक्य को वह ऐसे विचित्र, किन्तु मादक मधुर ढंग से गाकर कहता कि सुनने वाले एक बार अस्थिर हो उठते। उसके स्नेहाभिषिक्त कण्ठ से फूटा हुआ उपर्युक्त गान सुनकर निकट के मकानों में हलचल मच जाती। छोटे छोटे बच्चों को अपनी गोद में लिये हुए युवतियाँ चिकों को उठाकर छज्जों पर से नीचे झाँकने लगतीं। गलियों और उनके अन्तर्व्यापी छोटे छोटे उद्यानों में खेलते और इठलाते हुए बच्चों का झुण्ड उसे घेर लेता। और तब वह खिलौनेवाला वहीं कहीं बैठकर खिलौने की पेटी खोल देता।

बच्चे खिलौने देखकर पुलकित हो उठते। वे पैसे लाकर खिलौनों का मोल-भाव करने लगते। पूछते—"इसका दाम क्या है, औल इछका, औल इछका?" खिलौनेवाला बच्चों को देखता, नकी नन्हीं-नन्हीं अँगुलियों और हथेलियों से पैसे ले लेता और च्चों के इच्छानुसार उन्हें खिलौने दे देता। खिलौने लेकर फर बच्चे उछलने-कूदने लगते और तब फिर खिलौनेवाला सी प्रकार गाकर चल देता—"बच्चों को बहलाने वाला, खलौनेवाला।" सागर की हिलोर के ...

राय विजयबहादुर के बच्चे भी एक दिन खिलौने लेकर घर आए। वे दो बच्चे थे—चुन्नू और मुन्नू, चुन्नू जब खिलौना ले आया, तो बोला—"मेला घोला कैछा छुन्दल ऐ !"

मुन्नू बोला—"औल देखो मेला आती कैसा छुन्दल ऐ !"

दोनों अपने हाथी-घोड़े लेकर घर-भर में उछलने लगे। इन बच्चों की माँ रोहिणी कुछ देर तक खड़े-खड़े उनका खेल निरखती रही। अन्त में दोनों बच्चों को बुला कर उसने उनसे पूछा—"और ओ चुन्नू-मुन्नू ये खिलौने तुमने कितने में लिए हैं ?"

मुन्नू बोला—"दो पैछे में थिलौनेवाला दे गआ ऐ !"

रोहिणी सोचने लगी—इतने सस्ते कैसे दे गया है ?
कैसे दे गया है, यह तो वही जाने। लेकिन दे तो गया ही है, इतना तो निश्चय है।

जरा-सी बात ठहरी, रोहिणी अपने काम में लग गई। फिर कभी उसे इस पर विचार करने की आवश्यकता भला क्यों पड़ती।

(२)

छै महीने बाद—

नगर-भर में दो-ही-चार दिनों में एक मुरलीवाले के आने का समाचार फैल गया। लोग कहने लगे—भाई वाह ! मुरली बजाने में यह एक ही उस्ताद है। मुरली बजाकर, गाना सुनकर, वह मुरली बेचता भी है। सो भी दो-दो पैसे। भला इसमें क्या मिलता होगा। मेहनत भी तो न आती होगी

उत्तर मिला—" उमर तो उसकी अभी अधिक न होगी, य
स-बत्तिस का होगा। दुबला-पतला गोरा युवक है, बीकाने
ीन साफ़ा बाँधता है।"

"वही तो नहीं, जो पहले खिलौने बेचा करता था?"

"क्या वह पहले खिलौने भी बेचता था?"

"हाँ, जो आकार-प्रकार तुमने बतलाया, उसी प्रकार
भी था?"

"तो वही होगा। पर भई, है वह एक ही उस्ताद?"

प्रति दिन इसी प्रकार उस मुरलीवाले की चर्चा होती। प्र
 नगर की प्रत्येक गली में उसका मादक मृदुल स्वर सुन
ता—"बच्चों को बहलानेवाला मुरलियावाला!"

रोहिणी ने भी मुरलीवाले का यह स्वर सुना। तुरन्त
 खिलौनेवाले का स्मरण हो आया। उसने मन-ही-
ा—खिलौनेवाला भी इसी तरह गा गाकर खिलौने बे
ता था।

रोहिणी उठकर अपने पति विजयबाबू के पास गई
ी—"ज़रा उस मुरलीवाले को बुलाओ तो, चुन्नू-मुन्नू
ये ले लूँ। क्या जाने यह फिर इधर आवे, न आवे। वे भ
न पड़ता है, पार्क में खेलने निकल गए है।"

विजयबाबू एक समाचार-पत्र पढ़ रहे थे। उसी तरह उ
ये हुए वे दरवाजे पर आकर मुरलीवाले से बोले—"क्यों भ

क आई । इस तरह दौड़ते-हाँफते हुए बच्चों का झुण्ड आ
चा । एक स्वर से सब बोल उठे—"अम वी लेंदे मुल्ली, औल
म वी लेंदे मुल्ली ।"

मुरलीवाला-हर्ष-गद्‌गद्‌ हो उठा । बोला—"सबको देंगे भैया,
रा रुको, ज़रा ठहरो, एक-एक को लेने दो । अभी इतनी जल्दी
म कहीं लौट थोड़े ही जायँगे । बेचने तो आए ही हैं । और हैं
इस समय मेरे पास एक दो नहीं, पूरी सत्तावन ।...हाँ
बू जी, क्या पूछा था आपने, कितने में दीं ?...दीं तो वैसे
न-तीन पैसे के हिसाब से हैं, पर आपको दो-दो पैसे में ही
दूंगा ।"

विजयबाबू भीतर-बाहर दोनों रूपों में मुसकरा दिए । मन-
-मन कहने लगे—"कैसा ठग है ! देता सबको इसी भाव से
। पर मुझ पर उल्टा एहसान लाद रहा है । फिर बोले—"तुम
गों को झूठ बोलने की आदत होती है । देते होगे सभी को
-दो पैसे में पर एहसान का बोझ मेरे ऊपर लाद रहे हो ।"

मुरलीवाला एकदम अप्रतिभ हो उठा । बोला—"आपको
या पता बाबूजी कि इनकी असली लागत क्या है । यह तो
ाहकों का दस्तूर होता है कि दूकानदार चाहे हानि ही उठाकर
ीज़ क्यों न बेचे, पर ग्राहक यही समझते हैं—दूकानदार मुझे
ूट रहा है ।...आप भला काहे को विश्वास करेंगे । लेकिन सच
ूछिए तो बाबूजी, इनका असली दाम दो ही पैसे है । आप कहीं
ी भी दो-दो पैसे में ये मुरलियाँ नहीं पा सकते । मैंने तो पूरी एक

दो मुरलियाँ लेकर विजयबाबू फिर मकान के भीतर पहुँ-
।

मुरलीवाला देर तक उन बच्चों के झुण्ड में मुरलियाँ बेचत
। उसके पास कई रङ्ग की मुरलियाँ थीं। बच्चे जो रङ्
न्द करते, मुरलीवाला उसी रङ्ग की मुरली देता।

"यह बड़ी अच्छी मुरली है, तुम यही ले लो बाबू राजाबा
हारे लायक तो बस यह है।...हाँ भये, तुमको वही देंगे। य
। ..तुमको वैसी न चाहिये, ऐसी चाहिये?—यह नारङ्
की?—अच्छा यही लो।...पैसे नहीं हैं? अच्छा, अम्म
पैसे ले आओ। मैं अभी बैठा हूँ।...तुम ले आए पैसे?..
च्छा यह लो तुम्हारे लिये मैंने पहले ही से निकाल रक्ख
।...तुमको पैसे नहीं मिले! तुमने अम्मा से ठीक तरह
गे न होगे? धोती पकड़ के, पैरों में लिपट के, अम्मा से पै
गे जाते हैं, बाबू। ...हाँ फिर जाओ। अबकी बार मि
यँगे। ...दुअन्नी है? तो क्या हुआ, ये छ पैसे वापस लो
क हो गया न हिसाब? ...मिल गये पैसे! देखो, मैंने कैस
कीब बताई! अच्छा अब तो किसी को नहीं लेना है?—स
चुके? तुम्हारी माँ के पास पैसे नहीं हैं! अच्छा, तुम भी य
।...अच्छा तो अब मैं चलता हूँ।"

इस तरह मुरलीवाला फिर आगे बढ़ गया।

(३)

आज अपने मकान में बैठी हुई रोहिणी मुरलीवाले की सा

ा जान पड़ता है ? समय की बात है, जो बेचारा इस तर
ा-मारा फिरता है । पेट जो कराए सो थोड़ा ।

इसी समय मुरलीवाले का क्षीण स्वर निकट की दूसरी गल
सुनाई पड़ा—बच्चों को बहलाने वाला, मुरलीवाला !

रोहिणी इसे सुनकर मन-ही-मन कहने लगी—"स्वर कैस
ठा है इसका !"

बहुत दिनों तक रोहिणी को मुरलीवाले का यह मीठा स्व
र उसकी बच्चों के प्रति स्नेह-सिक्त बातें याद आती रहीं
ीने-के-महीने आए और चले गए, पर मुरलीवाला न आया
र धीरे-धीरे उसकी स्मृति भी क्षीण होती गई ।

(४)

आठ मास बाद—

सर्दी के दिन थे । रोहिणी स्नान करके अपने मकान क
पर चढ़ कर आजानुविलम्बित केश-राशि सुखा रही थी
ी समय नीचे की गली में सुनाई पड़ा—बच्चों को बहलाने
ला, मिठाईवाला ।

मिठाईवाले का यह स्वर परिचित था, झट से रोहिणी नी
र आई । इस समय उसके पति मकान में नहीं थे । हाँ, उसक
ा दादी थी । रोहिणी उनके निकट आकर बोली—"दाद
नू मुन्नू के लिये मिठाई लेनी है। जरा कमरे में चलकर ठहरा
। मैं उधर कैसे जाऊँ, कोई आता न हो । जरा हटकर मैं
क की ओट में बैठी रहूँगी ।"

दादी उठकर कमरे में आकर बोली—"ए मिठाईवाले, इ

? नयी तरह की मिठाइयाँ हैं; रंग-बिरंगी, कुछ-कुछ खट्टी
-कुछ मीठी और जायकेदार। बड़ी देर तक मुँह में टिकत
जल्दी नहीं घुलतीं। बच्चे बडे चाव से चूसते है। इन गुण
सिवा ये खाँसी को भी दूर करती हैं कितनी दूँ ? चपटी, गो
र पहलदार गोलियाँ हैं। पैसे की सोलह देता हूँ।"

दादी बोली—"सोलह तो बहुत कम होती है; भला पची
देते।"

मिठाईवाला—"नहीं दादी, अधिक नहीं दे सकता
तो भी कैसे देता हूँ, यह अब मै आपको क्या...। खैर,
धिक तो न दे सकूँगा।"

रोहिणी दादी के पास ही बैठी थी। बोली—"दादी, फि
काफी सस्ती दे रहा है। चार पैसे की ले लो। ये पैसे रहे।
मिठाईवाला मिठाइयाँ गिनने लगा।

"तो चार पैसे की दे दो। अच्छा, पचीस न सही, बीस
। अरे हाँ, मैं बूढ़ी हुई, मोल-भाव मुझे तो अब ज्यादा करन
नहीं आता।"—कहते हुए दादी के पोपले मुँह की जरा-
ुस्कराहट भी फूट निकली।

रोहिणी ने दादी से कहा—"दादी इससे पूछो, तुम इस शह
और भी कभी आए थे, या पहली ही बार आए हो। य
निवासी तो तुम हो नहीं।"

रोहिणी चिक की आड़ से ही बोली—"पहले यही मिठा
ते हुए आए थे, या और कोई चीज लेकर ?"

मिठाईवाला हर्ष, संशय और विस्मयादि भावों में डूबक
ला—"इससे पहले मुरली लेकर आया था; और उससे
ले खिलौने लेकर।"

रोहिणी का अनुमान ठीक निकला। अब तो वह उस
र भी बातें पूछने के लिये अस्थिर-अधीर हो उठी। व
ली—"इन व्यवसायों में भला तुम्हे क्या मिलता होगा ?"

वह बोला—"मिलता तो क्या है, यही खाने-भर को मि
ता है। कभी नहीं भी मिलता है। पर हाँ, सन्तोष और धीर
र कभी-कभी असीम सुख जरूर मिलता है। और यही
हता भी हूँ।"

"सो कैसे ? वह भी बताओ।"

"अब व्यर्थ में उन बातों की चर्चा क्यों करूँ। उन्हे आ
ने ही दें। उन बातों को सुनकर आपको दुःख होगा।"

" जब इतना बताया है, तब और भी बता दो।
त उत्सुक हूँ। तुम्हारा हर्जा न होगा। और भी मिठाई
लूंगी।"

अतिशय गम्भीरता के साथ मिठाईवाले ने कहा—

मैं भी अपने नगर का एक प्रतिष्ठित आदमी था। मका
व्यवसाय, गाड़ी-घोड़े, नौकर-चाकर सभी कुछ था। स्त्री थ

खिलौने। उनकी अठखेलियों के मारे घर में कोलाहल मचा रहता था। समय की गति—विधाता की लीला ! अब कोई नहीं है। दादी, प्राण निकाले नहीं निकले। इसीलिए अपने उन बच्चों की खोज में निकला हूँ। वे सब अन्त में होंगे तो यहीं कहीं। आखिर कहीं-न-कहीं तो जन्मे ही होंगे। उस तरह रहता, तो घुल-घुलकर मरता। इस तरह सुख संतोष के साथ मरूँगा। इस तरह के जीवन में कभी-कभी अपने उन बच्चों की एक झलक-सी मिल जाती है। ऐसा जान पड़ता है, जैसे वे इन्हीं में उछल उछलकर हँस-खेल रहे हैं। पैसों की कमी थोड़े ही है। आपकी कृपा से पैसे तो काफी हैं। जो नहीं है, इस तरह उसी को पा जाता हूँ।"

रोहिणी ने अब मिठाई वाले की ओर देखा। देखा—उसकी आँखें आँसुओं से तर हैं।

इसी समय चुन्नू मुन्नू आ गए। रोहिणी से लिपटकर, उस का अंचल पकड़कर बोले—"अम्मा, मिठाई।"

"मुझ से लो"—कहकर तत्काल कागज की दो पुड़ियों में मिठाइयाँ भरकर मिठाईवाले ने चुन्नू मुन्नू को दे दीं।

रोहिणी ने भीतर से पैसे फेंक दिए।

मिठाईवाले ने पेटी उठाई और कहा—"अब इस बार ये पैसे न लूँगा।"

दादी बोली—"अरे-अरे, न-न अपने पैसे लिए जा भाई !

किन्तु तब तक आगे ...

निरीक्षण

सन् १६४७ ई० । मास सितम्बर । दिनांक १७ ।

केशव कार से उतरकर सीधा सतीश के यहाँ जा पहुँचा । पास पहुँचने से पहिले, द्वार से ही उसने कहना आरम्भ कर दिया—"आज आपको आना ही पड़ेगा ।" फिर कुर्सी पर बैठता हुआ बोला—"कितने दिनों से मैं कह रहा हूँ; लेकिन आप सदा समयाभाव का बहाना बना देते हैं । अगर आप मुझे माफ करें तो मैं कहूँगा कि—भले काम के लिए जिन लोगों के पास समय का अभाव रहता है, उनको...।"

कि सतीश मुस्कराता हुआ बोल पड़ा—"उनको आज गोली से उड़ा देने का वक्त आ गया है । बस, यही न ?" और आँखों से चश्मा उतार कर उसके लैंस को श्यामा लेदर से साफ करने लगा !

केशव बोला—"ऐसा मैं नहीं, आप ही कह सकते हैं; क्योंकि आप हमारे मान्य नेता हैं । अतः आप जो कहेंगे, उसे चुप-चाप मान लेना मेरा कर्तव्य है ।" सतीश को बात-बात में ...लापन की दुहाई से एक चिढ़-सी हो गयी है । इसलिए भाव ...दलकर और फिर सतीश की ओर देखकर स्वयं ही मुस्कराता ...आ बोल उठा—"मज़ाक नहीं, सच-सच बतलाइये, किस ...क आइयेगा ?"

"—"

अभिप्राय तो सिद्ध नहीं करना है ? सतीश ने ऐसे सहजभाव ः
कह दिया कि एक आलोचक की कटुता का भान भी केशव कं
न हो पाया। किन्तु वह जानता है कि यह व्यक्ति मेरं
दुर्बलताओं को भी मृदुलता से ही टटोलता है ! इसलिए क्षणभर
को तो वह सम्भ्रम में पड़ गया। लेकिन सहन फिर भी कर नहीं
पाया इस आक्षेप को ! बोला—"आज भी अगर मेरी क़ीमत
पिछले हिसाब से ही लगाइयेगा, तो आमरण अनशन किये
बिना मुझे संतोष न होगा !" साधारण रूप से कह जाने पर
भी जब उसे संतोष न हुआ तो फिर कह डाला—"आज का
जगत् भी अगर सुधरे हुए समृद्धिशाली व्यक्तियों पर अविश्वास
ही करता रहेगा, तो बापू के जीवन की सारी साधना व्यर्थ
हो जायगी। कभी सोचा है आपने ?"

कहते हुए केशव उठ खड़ा हुआ। सतीश ने कहा—"बैठो-
बैठो ! बिगड़ो मत ज्यादा। आज मैं आऊँगा तुम्हारे काम का
निरीक्षण करने।"

एक ओर लोग शरणार्थियों को खाना परोस रहे थे और
शरणार्थी खाने पर टूट रहे थे। कुटुम्बियों के अमानुषिक
उत्पीड़न, वियोग और भूख की ज्वाला ने उनका संयम अस्थिर
कर डाला था। उनका मानसिक स्तर स्थानान्तरित होगया
था—सभ्यता से उतरकर असभ्यता और नागरिकता से च्युत
होकर अनागरिकता अब उनके लिए अधिक स्वाभाविक होगयी
थी। उनका धैर्य खो गया था; क्योंकि उनका संसार उजड़ गया
था। उनका असामान्य पौरुष खो ...

दूसरी ओर एक कमरे मे, कई शरणार्थियों से घिरा हुआ केशव बोल रहा था—"आप लोग यहाँ मेहमानदारी के लि तो आये नही, और यह भोज भी किसी सिंघानिया का प्रीति भोज नही है। फिर आप लोगों का यह कहना कि हमें खाने मे फल नहीं मिले, और मिठाई एक भी नही मिली, शोभा नही देता।"

उसका उत्तर उसे मिलता है—"शोभा आपको नहीं देता महाशयजी हमसे ऐसी बातें करना। हम फल और मिठाइयों पर लार टपकाने वालों में से नहीं हैं। हमारा तो कहना यही है कि आप हमको गलत मत समझिए। मुश्किल तो यह है कि आप यह सुनना भी पसन्द नहीं करते कि हमारे यहाँ का मामूली स्टैंडर्ड क्या है?"

केशव इस उत्तर को सुनकर स्तब्ध हो उठा!

शरणार्थियो के उस दल में कई स्त्रियाँ और नवयुवतियाँ भी है। एक व्यक्ति साग परोसने के लिए ज्योंही चार कटोरियो से भरा चौघरा लेकर उनके सामने पहुँचा, त्योंही वहाँ हलचल मच गयी।—"इधर भी लाना महाशयजी!" एक ओर से एक ौढ़ा ने कह दिया। इतने में आम की फाँक परोसता हुआ ्सरा व्यक्ति वहाँ जा पहुँचा, तो एक नवयुवती की दृष्टि उस पर ा पड़ी। बोली—"दो फाँके इधर भी।"

लेकिन तब तक थाल खाली हो चुका था।

सतीश पास ही खड़ा था।

ज्योंही सतीश ने उस नवयुवती की ओर ध्यान से देखा र
उसके स्मृति-पट पर कुछ चित्र घूमने लगे।

(२)

सन् १६४० ई०। मास अगस्त। दिनांक १२।

उस दिन रास्ते में उसे केशव मिल गया था। वह कहीं से तांगे पर आरहा था। अँधेरे में साइकिल पर किसी को आता देख उसने टार्च का स्विच ऑन कर दिया। फिर शरीर और ग्रीवा की एक लचक के साथ उसने कहा—"ओः सतीश। माफ कीजियेगा, आप तो सतीश है! लेकिन...इस वक्त जा कहाँ रहे हैं उस्ताद?"

फिर तेवर बदलकर ताँगेवाले से कहने लगा—"अबे खड़ा-कर! देखता नहीं कि मैं एक फ्रैंड से बातें कर रहा हूँ! नामाकूल, बटेर की औलाद!"

सतीश कुछ कहने ही वाला था कि ताँगेवाले पर केशव जो बरस पड़ा तो वह उसे देखता ही रह गया।

ताँगेवाला सहम गया, काँप उठा यह देखकर कि यह व्यक्ति आदमी की शकल में शैतान, और हैसियत में हमारा आक़ा है। ताँगा खड़ा करके वह केशव को इस तरह देखने लगा, जैसे गली चूहे की आँखें किसी बिल्ली को देखती हैं।

केशव ताँगे पर से उतर पड़ा और उसने ताँगेवाले को आदेश दिया—"ताँगा वापस लेजा।" ताँगा चल पड़ा और वह सतीश की ओर घूम गया। ...

"उतरिए-उतरिए, मुझे आपसे कुछ कहना है।" फिर टार्च क प्रकाश उसने सतीश की साइकिल की ओर फेंककर उसक हैंडिल थाम लिया।

सतीश साइकिल से उतर पड़ा। केशव के पास आते-आते उसने अनुभव किया, कि इस व्यक्ति के दिमाग़ का कोई पुरज़ा ढीला है। किन्तु अपने मनोभावों को रोक कर उसने कह दिया। "कहिए!"

केशव ने एक बार सतीश की ओर देखा, तो एकाएक उसे ऐसा प्रतीत हुआ जैसे सचमुच इसके आगे मैं एक कीड़ा हूँ, और यह एक सिद्ध पुरुष है। इसकी आँखें जब मेरे ऊपर आ पड़ती हैं तब मेरे मन में आता है, अपने सारे अपराध इसके आगे चुपचाप स्वीकार करलूँ। किन्तु फिर उसे याद आ गया कि यह प्रायः दूसरों के आग्रहों और अनुरोधों की अवहेलना करता है। तब वह स्वयं अहंकार से भर गया। तब जो कुछ वह कहना चाहता था उसे थोड़ा बदलकर उसने कह दिया— "आप मुझसे जितनी घृणा करते हैं, मैं आपके प्रति उतनी ही श्रद्धा रखता हूँ। अब मैं आप ही से पूछता हूँ—"हम दोनों में मनुष्य कौन अधिक है?"

सतीश केशव की इस बात को सुनकर चकित हो गया। ाह उससे ऐसे गूढ़ प्रश्न की आशा नहीं करता था। अतः केसी प्रकार की उत्कण्ठा प्रकट किये बिना सहज भाव से उसने कह दिया—"बात अगर सच हो, तो मानवता प्रबल आपमें ही ानी पड़ेगी। लेकिन मैं आपसे घृणा क्यों करने लगा?"

सकें। रोआँ-रोआँ आपका दंभ और पाखंड में डूब
ा है !"

एक बार तो सतीश को अपना पौरुष सजग होता जा
ा; किन्तु वह यही सोचकर रुक गया कि एक ही तमाच
ार ठिकाने से लग गया तो अंग-भंग हो जाने का डर
र यह उसकी कोरी कल्पना भी न थी। बचपन में एक बा
के एक साथी ने उसके घृणित परिहास के मिस कुछ क
ा था। उत्तर में उसने इतने ज़ोर का तमाचा मार दिय
कि उसका एक ओर का कान ही बधिर पड गया था
एव अपने ही द्वारा निर्धारित विनय, संयम और नियंत्रण
विजड़ित सतीश फीकी मुस्कराहट प्रकट करता हुआ
ा—"शायद !"

केशव मानो सतीश को उत्तेजित करना चाहता था। व
चता था कि उसकी बात का उत्तर देने में वह कटु हो जायगा
चा व्यक्तित्व रखने वाला व्यक्ति जब कटु बनता है, तब व
ा बन जाता है, जान पड़ता है—वह उस समय यही देखन
हता था, किन्तु अब उसको प्रतीत हुआ कि यह उसका भ्र
। तब वह पुनः सोचने लगा कि इस व्यक्ति में कोई ऐस
द्धि अवश्य है जिससे वह स्थान-च्युत नहीं होता; अपने सम
नहीं गिरता। तब उसे आश्चर्य ने घेर लिया और उसके म
आया कि—क्या कोई आदमी इतना ऊँचा उठ सकता है !

इसका फल यह हुआ कि वह स्वतः अपनी दृष्टि में औ

साइकिल को एक ओर फेंक पहिले झुककर केशव को कन्धे
पकड़ कर उठाते और पुन: उसे गले लगाते हुए सतीश बोला
—"आप यह क्या कह रहे हैं? मुझे ऐसा जान पड़ता है कि
ाप कुछ दुर्बलताओं से घिर गये हैं। किन्तु इस में चिन्ता की
ोई बात नहीं है। सृष्टि का ही यह एक कौतुक है कि प्रबल
ीव निर्बलों को खाते-खाते जब चरम विकास को प्राप्त हो
ाता है तब वह नष्ट हो जाता है और फिर जन्म लेकर निर्बलों
ी श्रेणी में आ मिलता है। अत: जो आप हैं वही मैं हूँ।
वल कुछ तत्वों का अंतर है। आपने अभी कहा था—"मैं पाखंडी
,—यह आपका भ्रम था। बुराइयों से मेरा वैर स्पष्ट है, किन्तु
नुष्य-मात्र के प्रति मेरी हार्दिक सहानुभूति है। शत्रु को भी
प्यार करता हूँ। मेरा बश चले तो मैं उसको भी मित्र
नालूँ।"

केशव सतीश के इस कथन को सुनकर विस्मित हो गया।
ौर तब किंचित् मौन के अनन्तर सतीश ने ही पुन: कहा—
चलिए!"

केशव का कण्ठ भर आया था और पलक भीग गये थे।
तीश ने एक हाथ से साइकिल उठायी और दूसरे हाथ से
शव का बायाँ हाथ थाम लिया। दोनों एक दिशा को चल
ये।

केशव अपने लाज की ओर जा रहा है; वह अब तक यही
मझ रहा था, पर निश्चित रूप से वह यह नहीं कह सकता

जिए, जो उसके हाथ में पड़ गयी है बस, अब उसी क
लम्ब शेष है। वह चाहे तो ऊपर आ सकता है और ब
कता है। पर उसके हाथों में इतनी भी शक्ति नहीं है कि व
ता से उस रस्सी को थाम सके। उसके हाथ शिथिल पड़ र
रस्सी उसके हाथ से छूट रही है; छूट रही है; वह अवलम
रहा है, खो रहा है!

सतीश सोचने लगा—"और चाहे जो हो, यह व्यि
हसी और वीर है, यह मानना पड़ेगा।"

सोचता-सोचता केशव बोला—आपको मेरे साथ चलने
ई आपत्ति तो नहीं।"

सतीश ने सान्त्वना और समर्थन के भावों में आकर कहा-
आपत्ति की इसमें बात क्या है ?"

बँगले के पास ज्यों ही उसका फाटक आ गया, त्यों
व उसी ओर मुड़ने लगा। सतीश ने रोकते हुए कहा-
धर कहाँ ? मेरा घर तो थोड़ा और आगे है।"

केशव ने एक बार फिर उस बँगले की ओर देखते हु
र दिया—"यहाँ मेरे एक मित्र रहते हैं। थोड़ी देर हम लो
ँ बैठते...तब।"

"पर मेरे पास अधिक समय नहीं है। मुझे तुरन्त घर जान
हिए। अच्छा हो, आप रुकें और मुझ को जाने दें।" सती
-ही-मन सोचने लगा—"यह आदमी जिस मित्र के यहाँ ज
है, हो सकता है कि वहाँ और भी देर लग जाय। मेर

दा उचित समय पर आती है पर इसी लिए क्या वह प्रिय
स्तु बन सकी है ?"

तब विवश होकर सतीश केशव के साथ चल दिया था।

(२)

बँगले के अन्दर पहुँचते ही बरामदे में एक सफेद कुत्ता देख
ड़ा बदन पर इतने घने और लम्बे बाल कि दृष्टि पड़ते ही हाथ
टटोलने को जी ललचा उठे । केशव को देखते ही दौड़कर
ह पैरों के पास जाकर ऊपर को मुँह करके पूँछ हिलाने लगा।
तीश को यह जानने में देर नहीं लगी कि इस घर के
लिए केशव परिचित ही नहीं, अत्यन्त आत्मीय है। केशव ने उसे
क बार पुकारा, दो बार पुकारा और फिर सिर पर हाथ फेरते
हुए कह दिया—"जा रे, अपनी मलका को खबर तो करदे।"

तुरन्त कुत्ता भीतर चला गया। पीछे-पीछे केशव हलकी हरी
बिजली से आलोकित भीतर ड्राइंग रूम में जाकर बिजली के
पँखे का बटन दबाता हुआ बोला—"बैठिए !"

सतीश उस समय थोड़ा शंकित हो उठा था, जब भीतर
खबर करने के सिलसिले में केशव ने 'मलका' शब्द का प्रयोग
किया था। पर ड्राइंग रूम देखकर शंका का भाव और आगे न
बढ़ सका। कमरे में पड़ी गद्देदार कोचों, फ़र्श पर मखमली
क़ालीनों और दीवारों पर लटकते सुन्दरतम चित्रों की दृश्यावली

सतीश बोल उठा "अपनी ऐसी आदत ही नहीं है।"

केशव ने कह दिया—"सम्भव है आपने बैरिस्टर सोहनल
ा नाम सुना हो।"

सतीश यह कहने जा ही रहा था कि मैंने नहीं सुना कि ए
धेड़ दासी ने प्रवेश करते हुए एक तश्तरी में पान-इलाय
समने तिपाई पर लाकर रखते हुए कहा—"सरकार अभी
नट में आ रही हैं।"

और इसी समय कुत्ता आकर वहीं बैठ गया। केशव पा
तश्तरी को आगे बढ़ाता हुआ बोला—"लीजिए, प
ाइए।"

उसने तश्तरी उठायी ही थी कि सतीश बोल उठा—"आपक
लूम है कि मैं पान नहीं खाता।"

केशव ने उत्तर दिया—"केवल ज्ञान होने से अनुभव न
जाता। ज्ञान में यदि इतना बल होता कि उसको पाक
ुष्य बदल सकता, तो संसार आज दूसरी ही स्थिति में होता
न की भी एक सीमा है। पर भोज्य पदार्थों का स्वाद कैस
ा है, इसका ज्ञान जो लोग बतलाने मात्र से प्राप्त कर ले
वे तोते हो सकते है, आदमी नहीं।...फिर हरएक पान बर
नहीं होता। खाकर देखिए ज़रा......।"

फिर भी सतीश ने पान छुआ तक नहीं। उत्तर मे वह पहि
कराया, फिर बोला—"एक सीमा तक मैं आपके कथन व

आ, एक निश्चित अवधि में दुर्ग को ध्वंस कर डालता है, जिसका उसे केवल ज्ञान है, किन्तु जिसकी सूरत उसने कभी नहीं देखी।

तब केशव झट से कुर्सी से उठकर भीतर जाता हुआ बोला —"यहाँ आप यह भूल रहे हैं कि यह अपवाद है। साधारणतः ऐसा हुआ नहीं करता।"

वह दो कदम अन्दर बढ़कर फिर लौट आया और बोला— "मित्र या अतिथि की बिदाई के क्षण अपनी मलका के साथ चलता हुआ न पाकर यह कुत्ता कभी-कभी अपनी जातिगत प्रकृति का परिचय देने लगता है। हालाँकि ऐसा अवसर नहीं आयगा; मैं भीतर बैठने नहीं जा रहा हूं।"

—"मैं इस तूफानी आदमी के साथ चला ही क्यों आया? पता नहीं कब चलना हो?" सतीश के मन में आया ही था कि उसने लक्ष्य किया, भीतर थोड़े अन्तर से वायलिन के मधुर स्वर आ रहे हैं। वह तत्काल उठा और उसने चाहा कि उठकर चल दे, चाहे वही दृश्य भले ही उपस्थित हो जाय, जिसका परिचय केशव अभी दे गया है। पर तुरंत उसने देखा, केशव के साथ एक लड़की आ गयी है। वह बारह के लगभग। देह पर केवल एक रेशमी कुरता और सलवार। कंधों पर जानु पर्यन्त फहराता झीना दुपट्टा। कटि के नीचे तक लटकती हुई गुँथी वेणी, पैरों में दिल्ली की सुनहरी कामदार जूतियाँ। हीरे के रिंग कानों में चमक रहे हैं। आते ही नमस्कार करती हुई उस कुर्सी के पीछे

पर सतीश तब तक आत्मगत हो गया। नाम रूप के अनुरूप ही है। पीछे अपेक्षाकृत एक प्रौढ़ महिला भी आ उपस्थित हुईं अत्यन्त महीन श्वेत साड़ी उनकी सुगठित देहलता पर शोभित प्रतीत होती है, आते समय हाथ जोड़कर नमस्कार करने तथा उसकी शालीनता प्रभावित करता है।

केशव ने परिचय देते हुए कहा—"श्रीमती अलका दर। और आपका परिचय अन्दर दे ही चुका हूं।"

परिचय के अन्तिम शब्द के ठीक बाद ही अलका बोली—"नाम सुन रखा था। आज सामने पाकर बड़ी खुशी हुई"

और हीरन कहने लगी—"श्रीमान् केशवकुमार एम० ए० (पेशगी) आज कितने दिनों में पधारे हैं, माँ! जुलाई-अगस्त में तो यह हाल था कि......।" फिर कहते-कहते रुक गयी और मुस्कराती हुई बोली—"दरवाजे की धूल कुछ अधिक साफ रहने लगी थी।" और रूमाल मुँह से लगा लिया।

"तो यह बात है!"—सतीश के मन पर एक निश्चय-बिन्दु बैठ गया, सोचने लगा—"पर क्या यह उचित है? उचित-अनुचित का विचार न भी करें, तो भी क्या यह स्वस्थ है? या इसमें जो परिहास है उसमें किंचित् आलोचन भी है।"

हीरन कथन के पूर्व केशव के पीछे से हटकर माता के पीछे चली आयी थी और केशव कथन के बाद सोफा से उठकर बरामदे में चला गया था। पर अब आठ अंश का कोण बनाते हुए झब्बेदार पर्दों के नीचे खड़ा होकर कहने लगा—"आ...
तो ...

"तू बड़ी ढीठ हो गयी है हीरन !"—कहती हुई अलका ने उसके सिर पर हाथ लेजाकर उसे हिला दिया और कहा—"क्यों !" फिर उसका हाथ पकड़ लिया, बोली—"बड़ों के सामने भला कोई इस तरह की बात करता है ?" और हाथ से अपने पास खींचती हुई कहने लगी,—"इधर आकर ठीक तरह से बैठ !"

हीरन ने माँ का हाथ छोड़ दिया। फिर थोड़ा मुँह बनाकर मानो आदेश की उपेक्षा करती हुई वह बोली—"हम यहाँ बड़े मजे में खड़े हैं। बड़ों के बराबर बैठना मना है। ऐसा वेद का वचन भी है।"

सतीश हीरन के मुख से शिष्टाचार की कठोर सीमाओं के प्रति वेदवाणी की कल्पित दुहाई सुनकर हँस पड़ा। हीरन यह देख प्रफुल्ल हो उठी कि उसका उत्तर सतीशजी को पसंद आया। खिलखिलाती हुई पूछ बैठी—"अच्छा बतलाइए, किस क्लास में हूँ ?"

सतीश ने देखा, केशव जिस आदमी के साथ फाटक की ओर जा रहा है, वह बगल में कपड़े से ढका हुआ वायलिन-सा कुछ दबाये हुए है। फिर उधर से ध्यान हटाकर उसने उत्तर दिया—"उमर के ख्याल से नवें में, प्रकृति के विचार से सातवें में और ज्ञान के विचार से दसवें में।"

हीरन बोली—"आप वास्तव में विद्वान हैं। मैं आपको पुनः नमस्कार करती हूँ।" और कथन के साथ वह माँ के पास जा बैठी। उसकी मुद्रा इस समय अपेक्षाकृत गंभीर हो गयी थी।

सतीश ने लक्ष्य किया, केशव ने ठीक अवसर पर लक्ष्य-वेध किया है, और विमल हास के साथ उत्तर दिया—"नहीं वत्स ! देर का कोई प्रश्न नहीं !" और वह उठने का उपक्रम कर ही रहा था कि अलका बोली—"आप तो पड़ोस ही में रहते हैं। देर भी हो जाय तो पहुँचते देर न लगेगी। फिर अभी आपका कुछ स्वागत-सत्कार भी... ... ..।"

वाक्य पूरा भी न हो पाया था कि दासी दो तश्तरियों मे आम ले आयी।

आतिथ्य-भार से संकुचित सतीश बोला—"यह आपने क्या किया ? मैं तो अभी एक मित्र के यहाँ से चाय और उस की कम्पनी को स्वीकार करके आ ही रहा हूँ।"

और मृदुल सरलता से अलका कहने लगी—"बरफ़ से तर किये हुए हैं। आपको पसन्द आयेंगे।"

और केशव हीरन की तरफ़ दृष्टि-क्षेप करता हुआ बोला—"मैं इस समय आम-वाम कुछ नहीं खाने का।"

तब मुस्कराहट रोकती हुई हीरन कहने लगी—"राशनिंग के कारण चीनी आजकल इतनी कम मिलती है कि मैंने फ़रमायशी चाय पिलाना बन्द कर दिया है।" और कथन के बाद उसने होंठ दबा लिये।

निश्छल सरलता से मन्दहास झलकाती अलका बोली—"इतना रमिया जानती है कि हमारे किस अतिथि के लिए कौनसी चीज बनानी होती है।"

ओर अलका ने हीरन के कान के पास मुँह ले जाकर कहा
ख तो, देर क्यों हो रही है ?"
हीरन भीतर चली गयी।

(४)

इतने में रमिया भागती हुई आकर बोली—"माँ जी, व
रथ हो गया।"
अलका घबड़ाकर उठती हुई बोली—"क्या हुआ ?"
भीतर से एक मन्द-क्रन्दन-ध्वनि सुन पड़ी। रमिया हाँफ
विशृंखलित भाषा में बोली—"बिल्ली ने एक लाल
ाकर खतम कर दिया !"

चप्पलों और जूतों की धमक। एक दालान, फिर जीन
ीं ओर बगल में छूटा हुआ एक कमरा। सामने खुली छत
के पश्चात् बराण्डा। चार लाल पिंजड़े के अन्दर। एक दुबक
ा बैठा है। दो इधर-उधर फुदक रहे हैं और एक तीलियों
ग मार रहा है। नीचे मृतप्राय एक लाल पड़ा छटपटा रह
गर्दन में दाँत धँस जाने से घाव हो गया है। उस पर र
छला आया है। दूसरा दाँत पङ्ख के मूल में लगा है औ
के कारण वह पङ्ख उस स्थान से उखड़कर उलट गया है
की लाल चोंच भूमि की ओर नत हो कर रह गयी है।

रमिया कह रही थी—"जिस समय मैंने देखा, उस सम
ी पहिले बायीं ओर के कमरे से इधर आ रही थी। उ

यही सँड़सी थी, सो मैंने उसको मार दी। सँड़सी उसके पैर ं लगी, तब तक मैं पास आ गयी। बिल्ली का वह पैर भी चोट खा गया है।"

आते समय सतीश ने केशव की ओर देखा—उसके मुख की वह श्री खो गयी है। उसपर पुत गयी है, दुःख की एक म्लान-छाया। वाणी मूक है। नेत्र स्तब्ध। एक ओर स्थिर मूर्तिवत खड़ा है जैसे जड़ बन गया है। जान पड़ा, इस घटना ने उस पर प्रभाव डाला है। किन्तु फिर प्रश्न उठा, कैसा प्रभाव? क्या वह सोच रहा है कि जीवन की यही गति है? अथवा वह सोच रहा है कि निर्बल सबलों के लिए सदा भोज्य बनता आया है। माना कि बिल्ली ने निरीह पक्षी की जान ले ली, जो अभी दस मिनट पूर्व इस सृष्टि के लिए शोभा और आकर्षण की वस्तु थी; किन्तु फिर बिल्ली के उदरपोषण की व्यवस्था क्या हो। आखिर उसकी भूख भी तो एक जीव की भूख है? फिर जान पड़ा उसकी अनुशोचना के उत्तरार्द्ध का यह वैज्ञानिक समाधान प्रकृति-मूलक जड़वाद नहीं, जीवन की क्षण-भङ्गुरता का यथार्थ स्वरूप है।

सतीश बोल उठा—"जीवन के इन दोनों क्षणों का यही अन्त है। संसार में ऐसी कोई शक्ति नहीं है जो इसमें अन्तर ाल सके, और इन्हीं दो क्षणों का उपयोग हम किस जड़ता ौर निर्ममता के साथ करते हैं।"

किसी ने कोई उत्तर नहीं दिया। अलका उसकी ओर

इसी समय केशव ने निःश्वास लिया और सतीश बोला—"अब मुझको तो आज्ञा दीजिए।"

केशव वहीं ठहर गया। अलका उस समय चाय के लिए आग्रह न कर सकी। सतीश बाहर चलने लगा तो अलका उसके पीछे हो ली।

हीरन के आँसू नहीं थम रहे थे।

× × × ×

उसी हीरन को इस शरणार्थी अवस्था में देखकर आज सतीश के आँसू भी थम नहीं रहे थे। वे आम की डिरों, वह लाल, जिसे बिल्ली ने दबोच लिया था ...... वह हीरन, जिसे चिड़िया तक पर प्यार था......—आज उसकी यह अवस्था!

और वह आज उस शरणार्थी कैम्प का निरीक्षण करने आया है; जिसमें हीरन जैसी सकड़ों, हजारों, लाखों...... !

उसकी आँखों से आत्मा का रक्त अब भी गिर रहा था—टप टप—टप टप !!

महापुरुष

मैं इस समय कचहरी में बैठा हूँ—नाज़िरात में। ऐसा ही कुछ काम आ गया है। यों काम चाहे न भी लगे, पर जब कभी-कभी मैं स्वयं ऐसे काम में लग जाता हूँ, तो चारा क्या है! जीवन में तृष्णा है और तृष्णा में द्वन्द्व। फिर द्वन्द्व ही जीवन है।

हाँ, तो मैंने कहा न कि मैं नाज़िरात में बैठा हूँ। कुछ सोच रहा हूँ, कुछ देख रहा हूँ। सोच-सोच कर देखता हूँ, और देख-देखकर सोचता हूँ। विविध प्रकार के चित्र सामने आ जा रहे हैं।

एक वकील साहब पेंट में हाथ डाले हुए जा रहे हैं। गति उनकी मन्द है।...कोट के बाहिरी जेब में मोड़ कर रक्खा हुआ चश्मा झलक रहा है। साइकिल पर आप आये हैं और पेंट में निम्न भाग को मोड़कर जो क्लिप लगाया जाता है वह अभी तक ज्यों का त्यों लगा हुआ है। पर इस ओर वकील साहब का ध्यान नहीं गया है। ध्यान जाये भी क्यों? उसकी ज़रूरत?......सिर के बाल सफेद हो गये हैं। पूरे तो नहीं, अधिकांश! लेकिन इससे क्या? बालों की सफेदी कोई चीज़ नहीं होती। दिल जिसका उज्ज्वल है, उसके बाल कभी उजले नहीं होते। और अगर हो भी ...

और वकील साहब ने जेब में हाथ डालकर देखा कि नोट कहीं ग़ायब तो नहीं हो गये! इसलिये तुरन्त उनको निकालकर गिनने भी लगे— एक-दो-तीन। ठीक तो हैं। दस-दस रुपये के तीन नोट हैं और सुरक्षित हैं।... फिर दूसरे हाथ से बाहिरी जेब में से चश्मा निकालना चाहा। ज़रा सा ऊपर को उठाया भी; किन्तु फिर जहाँ का तहाँ रख दिया और बढ़ चले। किन्तु दो ही क़दम आगे बढ़ पाये थे कि फिर लौट पड़े। अच्छा-तो— शायद कोई चीज़ भूल गये हैं।

इसी समय एक दूसरे साहब देख पड़े। खसखसी दाढ़ी है आपकी। बाल अभी सफेद नहीं हुए है, लेकिन इच्छा उनकी ऐसी ही जान पड़ती है। गौर वर्ण है, सिर पर सफेद मारकीन की गोल टोपी। पायजामा कुछ ऊँचा, पैरों के गर्द-गुबार से सर्वथा निश्चिन्त। हाथी काल का पुराने ढब का जूता पहने हुए हैं। शरीर अचकन से चिपका हुआ है या अचकन ही शरीर से चिपक गयी है—कौन जाने; इस विषय पर मैं बहस नहीं करना चाहता। आप चाहे जो समझ लें—मुझे आपत्ति नहीं।

हाँ, तो मैं आगे कहता हूँ। बायीं ओर एक दुलाई बग़ल से दबाये हुए हैं और उसके नीचे चारखाने का एक डस्टर लटक रहा है। दायें हाथ में टोंटीदार एक लोटा भी है। प्रतीत होता है कि आप इसी वक्त देहात से चले आ रहे हैं।

मैं बाहर आ गया था। जाड़े की धूप खड़ी-खड़ी खिलखिला रही थी। उन्होंने तपाक से आदाब अर्ज किया, तो अपरिचय के कारण मैं क्षण भर उन्हें देखता रह गया। उत्तर में मैंने तसली-मात अर्ज तो किया लेकिन —

मैंने कहा—"जान पड़ता है, कचहरी में आप शायद पहली बार ही आये हैं।"

"जी, आप बहुत बजा फ़रमाते हैं। मैं तो कम्बख्ती का मारा आ भी गया। मगर कसम क़ुरान की, जो इसमें एक हरफ़ भी झूठ हो। मेरे पुरखे तो इससे कोसों दूर रहा करते थे।

"यह तो नाज़िरात है मुंशी जी! यहाँ वकील लोग नहीं बैठते। वे लोग अधिकांश पश्चिम की ओर बैठते हैं। वहाँ उनके अलग-अलग कमरे भी हैं, या फिर उस चौरासी खम्भे वाली धर्मशाला में, जिधर से आप आ रहे हैं।"

"बहुत अच्छा—बहुत अच्छा।" कहते हुए कुछ सिर हिलाया, कुछ विनय—बल्कि कृतज्ञता प्रदर्शित की। फिर कहने लगे—आपका मैंने जो वक्त लिया, जो तकलीफ़ दी, उसके लिए माफ कीजिएगा। आ......हुजूर का दौलतखाना?"

"मैं? मैं तो परदेशी आदमी हूँ। यहाँ यों ही आ गया। हाँ, इस ग़रीब का घर कानपुर ज़िले में है।

"तभी। तभी तो मुझे ताज्जुब हो रहा था कि ऐसी सुलझी हुई जबान यहाँ इलाहाबाद में कैसे आ गयी! अच्छा, इजाज़त चाहता हूँ। आदाब अर्ज।" वे चले गये।

चले तो गये वे; लेकिन आगे बढ़कर जो साहब उनके सामने आये, उनसे भी उन्होंने यही प्रश्न किया—"क्यों भाई जान, बाबू चन्दर परकाश वकील......?"

"मैं बाबू चन्दर परकाश का [illegible]

से सताये हुए कभी-कभी सी-सी करने लगते हैं।—क्योंकि आज सवेरे से हवा चल रही है। हाथ-पर-हाथ रगड़ रहे हैं।...खीझ के साथ मुंशी जी के प्रश्न का उत्तर देकर एक झटका सा खाकर चल खड़े हुए। संतोष फिर भी नहीं हुआ। कहने लगे—"अजीब देहाती दहकानी आदमी मिल जाते हैं!"

ये साहब एक बेरिस्टर हैं। अपने एक मित्र से पूछकर मैं अभी जान सका हूँ। कर्कश बहुत हैं आप। प्रायः कहा करते हैं—"दुनियाँ में जितने भी महापुरुष हुए हैं, सब आतंकवादी थे। लोग बात करना तो दूर रहा, उनके सामने से होकर निकलने में भी काँपते थे! आतंक वह चीज है, जो मोची को मंत्री तक बना देती है!"

मेरा काम हो चुका है। बस, मुझे किसी तरह यहाँ चार बजा देने हैं और अपने मित्र राजेश्वर के साथ चला जाना है। इसी नाजिरात में वह क्लर्क है। मैंने सोचा, जरा-सा घूम ही लूँ। ऐसा सजीव बाइसकोप भला और कहाँ देखने को मिलेगा?

एक-एक करके कई इजलासों में घूम आया। कहीं कोई परिचित व्यक्ति नहीं देख पड़ा। न मुंशी जी ही देख पड़े—न वे वकील साहब—न वे भावी महापुरुष। और मैं सोचता वही हूँ कि इन्हीं लोगों में से कोई मिल जाता, तो कितना अच्छा होता! वकील साहब को केवल थोड़ी देर देखना चाहता हूँ। बेरिस्टर साहब से उलझ पड़ने की तबियत होती है और मुंशी जी से मिलकर उनकी बातें सुनने की लालसा।

एक ओर पीपल के पेड़ तले आप ...

होगा ." अरे सुनो महराज !—कोई ताजी गरम चीज भी बनाई है ?"

"समोसे बन रहे हैं। पावभर ले आऊँ ?"

"और कोई मीठी चीज ?"

"बरफी बहुत बढ़िया है।"

"दोनों आध-आध पाव। लेकिन यहाँ मत लाना। कोई...! चलो वहीं चलें। तीन बज गया। भूख लग उठी है। काम में तबियत नहीं लग रही थी।" कहते-कहते मेरे कन्धे पर हाथ रखकर राजेश्वर चल दिया। हम लोग अभी महराज के पास पहुँच भी न पाये थे कि मुंशीजी दिखलायी पड़ गये।

तब राजेश्वर का साथ छोड़कर मैं तुरन्त उधर बढ़ गया। राजेश्वर पूछता ही रह गया—"अरे ! कहाँ जाते हो ? कुछ खाते तो जाओ।" लेकिन मुझे तो इस समय दूसरी ही खुराक चाहिये।

निकट पहुँचते ही मैंने पूछा—"कहिये भेंट हुई ?"

"कहाँ हो सकी ? कोई अपनी जगह पर नहीं मिला—"यहीं कहीं होंगे," उनके मुंशीजी कह रहे थे।

"उनको आप पहचानते हैं ?"

"यही तो मुसीबत है पंडित जी।"

"तो उनके मुंशी से क्यों नहीं कहा कि उनसे मिला दें।"

"कहना चाहता था। लेकिन कहना कैसे। ...

"लेकिन यह तो उसी का फर्ज था। इसमें पैसे की कौ
त थी ?"

"फर्ज क्या चीज है, किस वक्त पर और किस तरफ से शु
ा करता है, इसका फैसला भी तो यही लोग—सुना है कि-
ने आप कर लिया करते हैं।"

"चलिये, मैं आपके साथ चलता हूँ। उनके मुन्शी को ऐस
र बताता हूँ कि वह भी याद करे। यह भी नहीं सोचा ि
ससे काम निकलता है, उनकी सुगमता की ओर ध्या
 उनका कितना बड़ा धर्म है।" कथन के अनन्तर मैं मुन्श
को साथ ले चल दिया।

चलते-चलते मैं बातों में लग गया—

"आप किस काम से आये हैं ?"

"एक रुक्के की नालिश करनी है। रुपये वसूल होने क
ाद पूरी हुई जाती है। दोस्तों ने कहा—डिगरी करवा लो
े रुपये वसूल होने का मौका तो रहेगा।"

"आसामी की हैसियत क्या है ?" मैंने प्रश्न कर दिया

तब वे बोले—"हैसियत की बात न पूछिये ! महज एक ज
बैल की खेती करता है। जिस वक्त रुपया दिया था, उस वक्
की खुशहाल था। अब वह बात तो नहीं रही। लेकिन देन
हता, तो थोड़ा-थोड़ा करके दे भी सकता था।"

"कभी आपने तकाजा भी किया ?"

सुनकर मैं सोच में पड़ गया, मैं चुप रह गया ' तक़ाज़
हीन किया नहीं। आदमी भी वह बहुत सीधा-सादा है।.
चाहता तो दे भी सकता था—आखिर इन बातों का मतल
है ?"

मैंने मौलाना की ओर देखा। वे उस वक्त बड़े परेशान नज़
रहे थे। उनकी मुद्रा पर एक उद्दाम अनुशोचन था—पछ
रहे थे वे। मैंने कहा कुछ नहीं फिर भी वे बोले—मेरा मतल
परेशान करना नहीं। मैं तो सिर्फ कायदे की कार्यवा
ने चला आया। मुझे डिगरी इजराय नहीं करनी। लेकि
ान की ज़िन्दगी तो महज फ़र्ज़ का एक तक़ाज़ा है। आप
मतलब समझा कि नहीं ?"

अब हम लोग बाबू चन्द्रप्रकाश के कमरे में जा पहुँचे थे
री कह रहा था—"बाबू साहब आते ही होंगे। आप नाह
शान हो रहे हैं : तशरीफ रखिये।"

तब वे ज़मीन पर बिछे हुए टाट पर बैठ गये।

मैंने देखा—दुलाई और लोटा एक जगह कोने में क़ायदे
खा है। तब पूछ दिया—"आप खाना खा चुके कि नहीं ?
"खाना तो आज कल शाम को ही मिलता है। रमज़ान
त हैं न।" कहते-कहते यकायक मौलाना के मुख पर सात्वि
ता का अकृत्रिम उल्लास मुखरित हो उठा।

मेरे ध्यान में आया, राजेश्वर क्या कहता होगा, वह भूख

और उनके भूखे मुख पर रमज़ान शरीफ के लिये अटूट श्र
लोकित हो रही है। तब मुहर्रिर से मैंने कह दिया—

"क्यों मुन्शी जी, इसी तरह से आप अपने वकील साह
साथ अपना कर्तव्य पूरा करते हैं। ये वकील साहब से मिल
लिए कितने व्याकुल हैं, आपको यह बात अच्छी तरह
लूम हो चुकी है। इसका काम ज़रूरी भी हो सकता है। य
वना आपका ही काम है। फिर भी आप यह नहीं सोचते f
को उनसे मिलाकर बात करवा देना कितना ज़रूरी है
?"

तुरन्त उत्तर मिला।

"मैं एक और ज़रूरी काम में लगा हुआ था। चलिये, आ
रे साथ चले चलिये।"

उधर से वकील साहब आ रहे थे। बहुत परेशान से दे
रहे थे। उनके मुख पर हवाइयाँ उड़ रहीं थीं। अपने मुन्श
ओर देखते ही बोले—"वे तीनों नोट मालुम नहीं का
र पड़े।"

"नोट गिर पड़े!" चकित मुद्रा से मुंशी बोला।

"क्या कहा आपने?—नोट गिर पड़े। कितने के नोट थे
कहाँ गिर पड़े"—मौलाना ने पूछ दिया।

वकील साहब अप्रतिभ तो थे, लेकिन मौलाना के इस प्र
कि किस वक्त—कहाँ गिर पड़े—उनके ओठों पर क्षणिक ह

मुंशी बोला—"बतलाइये। कहाँ खोजूँ ?"

वकील साहब बोले—"खोजने की जरूरत नहीं है। सुब
ही मुझे डर लग रहा था, कहीं गिर न पड़ें। वही बात हुई
ी जेब में और भी कई कागजात थे, कई मरतबे उन
ालने की जरूरत पड़ी थी। किसी वक्त वे नोट भी साथ
कल कर गिर पड़े होंगे, पर अब क्या हो सकता है। जो ची
ने वाली है, उसे पास कौन रख सकता है ?"

फिर मुंशी से कहने लगे—"जाओ, मैं चेक देता हूँ। बै
रुपया ले आओ।"

"लेकिन अब तो सवा तीन हो रहा है।" मुंशी बोला।

"तो त्रिवेणी बाबू की नालिश आज भी रह गयी।" कह
चन्द्र प्रकाश उनकी फाइल देखने लगे।

इसी समय मैंने कहा—ये मौलाना आपको बड़ी देर
ज रहे थे। बंगाल से आये हैं। इनको आप से जरूरी का
मेरे ख्याल से अगर आप इनको भी थोड़ा सा वक्त दे दे
....।"

"पर मेरा काम ऐसा नहीं है कि उसे आज ही कर डालन
री हो। आप इतमीनान से अपने कागजात देख लीजिये
भी मुझे आज वापस नहीं जाना, मकान पर सारा मामल
झा दूँगा। यहाँ आपको जल्दी भी हो सकती है, यों भ
की कमी आपको हमेशा रहती होगी।"

कहते-कहते संकेत से मौलाना मुझे बाहर ले आये और ह

"कहिये—कहिये । न कहने की बात हो तो भी तबियत ह
कहीं डालिये ।" मैंने उत्तर दिया ।

"एक साहब से मैंने इन वकील का पता पूछा था । वे ज
गड़े दिल थे । बड़बड़ा उठे । मैं उनकी शक्ल देखता रह गया
र इन वकील साहब को खोजने के प्रयत्न में मैं जो इधर-उ
ता फिरा, तो वे साहब एक जगह पड़े हुए कुछ कागज़ा
ते देख पड़े । मैंने समझा, उनके होंगे । लेकिन..."

इस लेकिन के साथ उनका वक्तव्य स्थिर हो कर रह गया
उस समय उनसे कुछ कह नहीं सका । मैं सोचता था—सन्दे
तलोगत्वा है तो सन्देह ही, उसका अस्तित्व क्या ? बहुते
ाधार बातें भी मानस पर आ आकर तैरा करती हैं—त
ु पर हमारे संकल्प-विकल्प प्रश्नोत्तर बन बनकर उत्थि
नष्ट होते रहते हैं । मैं कैसे कहूँ कि बैरिस्टर ऐसा जघन्य का
सकता है !

इतने में राजेश्वर ने देख लिया । वह दूर से ही बोला-
चित्र आदमी हो ! उस समय जलपान के लिए मैं बुलाता ह
गया और तुमने घूम कर देखा तक नहीं । फिर महराज
ी भी मैं इन्तजार करता रहा । और अब देखता हूँ कि तु
र खड़े-खड़े मौलाना का वक्त खराब कर रहे हो ! या
ये ही थे तो कोई फौजदारी केस देखते । हमें साहब आये हैं
क़त्ल के मामले में; उनकी बहस ही सुनते । लेकिन तुम ठह
सक्कर के सनकी । "अच्छा चलो, अब तो चलो । आज
र ।...और हाँ मौलाना साहब, आप इनको साथ ले जा

तब मैंने अन्य उपाय न देख मौलाना साहब से कह दिया
ाप वकील के यहाँ तशरीफ़ रक्खें। मैं अभी आता हूँ।"
राजेश्वर बोला—"इन मौलाना साहब को तुमने बेक
स रक्खा है! इनसे तुम्हारी दोस्ती कब हो गयी? कभी इन
भी गये हो!" "ये मुझे नहीं जानते, लेकिन मैं इनसे परिचि
...अगर तुम खुद आदमी नहीं बन सकते, तो आदमी
ज्ज़त भी क्या तुम नहीं कर सकते?" मैंने जलकर कह दिया

'ओः तो यह कहो कि तुम बिहारी बाबू न होकर कोई मह
प हो!—देवता। और तभी सातवें आकाश से बोल रहे ह
जमीन पर चलो, जमीन पर।" मैंने तब जोर लगाकर हा
ा कर जाने छुड़ाने की चेष्टा करते हुए कह दिया—"मु
ने दो—मुझे जाने दो। मैं इस तरह...मुझे यह तरीका.
ई शर्म आनी चहिये।'

और उसे बरबस छोड़कर मैं भाग खड़ा हुआ।

तब प्रतिहत होकर राजेश्वर बोला—मुझे क्षमा करो बिहार
बू। मैंने कोई उत्तर नहीं दिया और मैंने उसकी ओर देखा त
। क्षण भर हम दोनों मौन रहे।

तब राजेश्वर बोला—" तुम नहीं जानते मैं तुम्हारी कित
ज़्ज़त करता हूँ। लेकिन मैं करूँ क्या, मैं अगर इस तरह
, तो यहाँ की नाटकीय जिन्दगी मुझे खा जाय! तुम जान
हरएक आदमी को समझने की कोशिश करने वाले व्यक्ि
इस दुनियाँ में काट का उल्लू कहा जाता है।

हे मैं इत्मीनान के साथ अपना काम समाप्त करके चल देता तुम्हारे साथ। मैं जानता हूँ, तुम्हें भूख लगी होगी।

मैंने कह दिया—"जब मुझे मानसिक भोजन ग्रहण करने का अवसर मिलता है, जब मैं शारीरिक भूख की चिन्ता नहीं करता, समझते हो न? मुझे मौलाना से मिलना जरूरी है। मैं थोड़ी ही देर में लौट आऊँगा। तुम ठीक चार बजे तो मेरे साथ चल दोगे न?"

"चार बजे! चार बजे तो नाजिर जी भी नहीं उठते, अच्छा, आज उनसे कह कर तुम्हारे लिए कुछ पहले ही चलने की कोशिश करूँगा!"

तब मैं मौलाना के पास चल दिया। वे वहीं खड़े-खड़े मेरी प्रतीक्षा कर रहे थे। मैं जो उनके निकट पहुँचा तो वे बोले—"अब मैं लौट जाना चाहता हूँ पंडित जी सोचता हूँ, मैं नाहक आया। रुपया वसूल हो चाहे न हो, पर मैं उस आसामी पर नालिश नहीं कर सकता। वह जब मुझसे चचा कहकर बात करेगा, तो उसके सामने मेरी निगाह झुक जायगी। थोड़े से रुपये के लिए मैं अपनी ही नजरों में गिरना नहीं चाहता। रह बाकी रुपये वसूल होने की बात—सो मेरा खयाल है, अगर मैं तक़ाज़ा करूँ, तो वह जल्दी दे देगा अच्छा...।" और उन्होंने इन शब्दों के साथ आदाब अर्ज किया। उधर से मेरे मुँह से एक शब्द तक न निकला, मैं उनकी ज्योतिर्मयी मुद्रा की ओर देखता

अब मुझसे चुप नहीं रहा जा सका। मैंने कहा—"मैं जाऊँगा।...चलिये चलिये मैं आपको कहीं तक पहुँचा आऊँ।" वे बोले—"आप जैसा कोई आदमी मैंने आज तक कहीं नहीं देखा। मुझे आपके अन्दर कोई फरिश्ता नजर आता है। वे मेरे साथ बाहर की ओर चल पड़े। और मैंने कह दिया—और चाहे जो कह लीजिये पर मुझे लज्जित मत कीजिये।

मैं इस बार फौजदारी अदालत की ओर से घूमता हुआ उन्हें ले गया। वहाँ बरामदे में खड़े-खड़े वही बैरिस्टर महोदय—भावी महापुरुष—अपने किसी साथी से कह रहे थे—"उल्लू हो तुम! Chance खोते हो। जानते हो, Chance खोने वाला आदमी कभी तरक्की नहीं कर सकता।

मैंने मौलाना की ओर देखकर कहा—सुन रहे हैं आप?

वे मुसकराये भर, बोले कुछ नहीं।

और बैरिस्टर महोदय कह रहे थे—"तुमको यह सुनकर ताज्जुब होगा कि आज मैंने एक मिनट की कशमकश में तीस रुपये पैदा किये—तीस रुपये—दस-दस के तीन नोट!